मनुस्मृति में शिल्पियों की सामाजिक आर्थिक दशा

"SOCIAL AND ECONOMIC CONDITION OF THE ARTISANS IN THE MANUSMRITI"

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्त्ता
सुरेन्द्र सिंह यादव
प्रवक्ता, इतिहास विभाग
श्रीमती इन्दिरा गांधी राजकीय महाविद्यालय
लालगंज, मिर्जापुर

शोध निर्देशक
डॉ० शशिकान्त राय
वरिष्ठ प्रवक्ता
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

नवम्बर २००२

पुरोवाक्

'मनुस्मृति मे शिल्पियों की सामाजिक एवं आर्थिक दशा' विषय पर शोध प्रबंध प्रस्तुत करने की प्रेरणा मुझे मेरे गुरुवर डा0 एस0 के0 राय जी से मिली। किसी भी समाज के अध्ययन के लिए व्यावसायिक समूह एवं शिल्पियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। भारतीय सामाजिक सदर्भ को समझने के लिए शिल्पियों के अध्ययन की आवश्यकता और भी अधिक है। वर्ण और जाति व्यवस्था जिसके ऊपर भारतीय सामाजिक संरचना का ढॉचा प्रतिष्ठित रहा है, कुछ हद तक वृत्ति मूलक चरित्र की रही है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में ऐसे शिल्पों का गहराई के साथ क्रमबद्ध रूप से अध्ययन करने का एक विनम्र प्रयास किया गया है। इस अध्ययन मे शिल्पियों की आर्थिक और सामाजिक दशा पर दृष्टिपात करने का प्रयास किया गया है। शोध प्रबन्ध के अध्ययन का दृष्टिकोण सामान्य रूप से प्राचीन भारतीय सामाजिक आर्थिक इतिहास की ओर उन्मुख रहा है।

शोध के समय विषय सामग्री के चयन एवं संकलन की समस्याएँ उठी जिसके समाधान में विभिन्न पुस्तकालयों या इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय, इलाहाबाद संग्रहालय श्रीमती इन्दिरा गांधी राजकीय महाविद्यालय लालगंज, मिर्जापुर के पुस्तकालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, पुस्तकालय, एवं चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी से मुझे काफी सहायता मिली। इसके लिए मैं इन पुस्तकालयाध्यक्षों एवं संचालकों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

डा0 शशिकान्त राय ने जिस प्रकार से मेरे शोध प्रबन्ध को सुधारा एवं सवारा तथा जिस उत्साह से मेरा मार्गदर्शन किया उसके लिए मैं उनका आजन्म ऋणी रहूँगा।

इस शोध प्रबन्ध के सम्पादन में मुझे अनेक विद्वानों और मनीषियों के सामीप्य का सौभाग्य मिला। मै प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति, एवं पुरातत्व विभाग के प्रसिद्ध विद्वान एव विभागाध्यक्ष प्रो0 ओम प्रकाश, पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो0 विद्याधर मिश्र के प्रति आभार प्रकट करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिन्होने मेरे, शोध कार्य को सहजता प्रदान किया।

इसी सन्दर्भ मे डा0 आर0 पी0 त्रिपाठी, डा0 जे0 एन0 पाल डा0 ओ0 पी0 श्रीवास्तव, डा0 रजना वाजपेयी, डा0 जय नारायन पाण्डेय, डा0 जी0 के0 राय, डा0 प्रकाश सिन्हा, डा0 हर्ष कुमार एव अन्य गुरुजनों का मैं आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध कार्य को पूर्णता प्रदान करने मे सहायता प्रदान की। इसके साथ ही श्रीमती इन्दिरा गॉधी राज0 महा0 लालगंज, मिर्जापुर के प्राचार्य श्री वी0 पी0 यादव व हिन्दी विभाग के रीडर डा0 क्षमा शंकर पाण्डेय से प्राप्त मार्गदर्शन के लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

तत्पश्चात् मै अपने पूजनीय माता–पिता के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपने वात्सल्य तथा संरक्षण से मुझे इस योग्य बनाया कि मैं शिक्षा के इस उच्चतरशिखर पर स्वयं को आरूढ करने में अपने को समर्थ बना सका। इस कार्य में परम पूज्य अग्रज श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह यादव (पुलिस अधीक्षक, सतर्कता) एवं भाभी श्रीमती मनोरमा यादव के कृतज्ञता भार से मेरा मस्तक सदैव उनके प्रति नत रहेगा और मैं सर्वदा उनका ऋणी रहूँगा।

मेरे इस प्रयत्न को साकार रूप देने में मित्रगण डा0 उत्तमसिंह (प्रवक्ता दर्शनशास्त्र), डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद यादव (प्रवक्ता समाजशास्त्र), श्री राजीव कुमार सिंह, श्री नगीना यादव, श्री दया शंकर यादव, श्री विक्रम यादव, रामकुवंर यादव, सुभाष एवं मेरे छात्र विनय कुमार सिंह ने भरपूर सहयोग दिया और समय–समय पर मेरा उत्साहवर्द्धन किया जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। मैं अपनी धर्म पत्नी श्रीमती किरन यादव व पुत्री शिवाली

का भी आभारी हूँ जिन्होने इस शोध कार्य में बराबर सहयोग दिया। अस्तु मेरे अनुज श्री योगेन्द्र यादव का योगदान सराहनीय रहा।

अन्त मे मै उन सभी विद्वानों एव ग्रन्थकारो का आभारी हूँ जिनके विचारो से मुझे प्रत्यक्ष/ अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में सहायता मिली। साथ ही *'शिवम् साइबर कैफे'* के सचालक प्रमोद शर्मा व टकण श्री मिश्री लाल को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने शोध प्रबन्ध को इस रूप मे प्रस्तुत किया।

साथ ही मुझे आशा है कि विद्वज्जन एव मेधावी गण मेरे इस शोध विषय की सामान्य त्रुटियो पर ध्यान न देगे। विविध प्रयासों के बाद भी त्रुटियाँ स्वाभाविक है, अतएव विज्ञजनों से निवेदन है कि वे परिहार्य एवं अरिहार्य त्रुटियों को क्षमा करते हुए शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन करेंगे।

भवदीय

सुरेन्द्र सिंह यादव

सुरेन्द्र सिंह यादव

स्थान : इलाहाबाद

दिनाक . 26.11.2002

विषयानुक्रमणिका

शिल्प का स्वरूप

शिल्प का स्वरूप

शिल्प विस्तृत गुणों वाला शब्द है जिसमे अनेक कलाएँ, चातुर्य व व्यवसाय सम्मिलित है। शिल्प शब्द का प्रारम्भिक आविर्भाव ब्राह्मण[1] और संहिता[2] साहित्यो मे मिलता है। उदाहरणार्थ शतपथ, आत्रेय, गोपथ, शंखायन, तैत्तरीय आरण्यक इत्यादि मे शिल्प शब्द का आविर्भाव पाया जाता है। इनमें इस शब्द को अनेक कार्यों जैसे शारीरिक कला, श्रृँगारिक कार्य और रसमेय, कलात्मक कार्य आदि के रूप में परिभाषित किया गया है। ब्राह्मण साहित्य में शिल्प पद को कला के कार्य के अर्थ में प्रयोग किया गया है। ये कार्य देवताओ के कला के रूप में है– जैसे एक हाथी, एक मदिरा पात्र, एक सुनहला आभूषण, एक रथ ये शब्द कला के कार्य हैं।[3] कौशितकी ब्राह्मण मे तीन प्रकार के शिल्पों का वर्णन मिलता है। नृत्य, संगीत और गायन। पचविंश ब्राह्मण[4] में शिल्प पद को अनेक प्रकार के सजावट के रूप में बताया गया है और शिल्पत्व शब्द, शिल्प शब्द का परिचायक है। इस प्रकार से शिल्प शब्द के भिन्न प्रयोग स्पष्ट रूप से संकेत देते हैं कि ये सभी कार्य शिल्प के अन्तर्गत आते है जिनमें गायन, नृत्य की भजन के एकत्रीकरण की आवश्यकता होती है। नाट्य कलाओं के क्षेत्र में इस शब्द का प्रयोग नाटक के रूप में किया गया है जिसे प्राचीनकाल में 'शिल्पक'[5] के रूप में जाना जाता था, जिसका वर्णन मोनियर विलियम्स ने अपनी पुस्तक "इंडियन विजिडम" मैं किया है।

शिल्पपद को "श्रृँगारिक कार्य" के रूप में अश्वलायन श्रौतसूत्र में प्रयोग किया गया है। इस अर्थ में यह "करु" जो "कृ" धातु से लिया गया है के निकट है। वेदों मे इसका अर्थ एक रचनाकार या कलाकार या भजनों का गायक या एक कवि के रूप में आया है। ऋग्वेद में विश्वकर्मा को सृष्टि के देव[6] एवं "धातु करमार' के रूप में जाना जाता है। विश्वकर्मा को कच्चे धातु से वस्तुओं की रचना करने वाला कहा गया

है जिसे ऋग्वेद मे संघमान[7] के रूप में जाना जाता है। वी एस. अग्रवाल ने "इडियन आर्ट" नामक पुस्तक में काटने के कार्य, बनाने के कार्य, रंगने के कार्य को शिल्प के रूप मे प्रयुक्त किया है।

व्यवसाय के रूप में इस शब्द का प्रयोग सहिता और ब्राह्मण साहित्य मे सुरक्षित मिलता है। वेदो में तक्षक, रथकार, करमार आदि व्यवसाय के रूप मे शिल्प का प्रयोग किया गया है, ऋग्वेद में केवल करमार और तक्षक, बुनकर, चर्मकार, और रथकार के रूप में जाने गये थे[8] बाद में वैदिक संहिताओं में और दूसरे व्यवसाय भी सम्मिलित हुए है जैसे कुम्हार, बढ़ई, स्वर्णकार, चरवाहे आदि। इस प्रकार के व्यवसाय जो शिल्प के अन्तर्गत आते है वे आर्थिक प्रगति लाने में सहायक होते हैं।

वैदिक काल में इन कलाकारों का विशेष रूप से तक्षक, रथकार का सामाजिक स्तर यद्यपि भिन्न-भिन्न होते थे किन्तु जाति या वर्ग के रूप में इन कलाकारों ने समाज में एक बहुत सम्मानपूर्ण स्थिति ग्रहण कर लिया था। अथर्ववेद में इन वर्गों के कुछ लोग आर्य जाति के अन्तर्गत समझे जाते थे। तक्षक, रथकार, करमार और उनकी प्रशासनिक जिम्मेदारी की विशेष स्थान का संकेत, दूसरे पुस्तकों में भी मिलता है। इनको रत्निन के रूप में राज्यभिषेक में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था[9]। वैदिक काल में कृषक समाज में शिल्प शब्द का अधिक प्रयोग कृषि से भिन्न उत्पाद के रूप में पाया जाता है। ये कलाकार समाज में अत्यधिक प्रशंसित थे। ये शिल्पी न तो शूद्र तक सीमित थे और न तो इनका अभ्यास अवरुद्ध था।

जब शिल्प के अन्तर्गत पत्थर का प्रयोग हुआ तो वैदिक काल के तक्षकों ने अपनी तकनीकी को परिवर्तित कर दिया और इस कला के कार्य के विकास मे योगदान दिया। प्रारम्भिक स्तर पर वे काष्ठकला से सम्बन्धित थे। शिल्प का विकास वैदिक काल के बाद तीव्र गति से हुआ। बौद्ध ग्रन्थों में अनेक व्यवसायों का संकलन

मिलता है। मज्झिमनिकाय[10] मे इनकी सख्या 12 है और दीर्घ निकाय, महावस्तु और मिलिन्दपन्हो में व्यवसाय की लम्बी सूची है। जिसमे कलाकारों के एक संगठन का सकेत मिलता है। इनके वर्गीकरण के सम्बन्ध मे विनयपिटक नामक ग्रन्थ कहता है कि सिप्प का अर्थ है दो प्रकार का शिल्प-एक निम्न शिल्प दूसरा उच्च शिल्प। निम्न शिल्प के अन्तर्गत टोकरी बनाने वालो की दस्तकारी, बर्तन बनाने वालों की दस्तकारी चर्मकार की दस्तकारी, क्षौरकर्म की दस्तकारी इत्यादि एवं उच्च दस्तकारी के अन्तर्गत 'मुडडा', ''गनना'' लेखा आदि आते थे।

ऋग्वेद मे जिन व्यवसायगत समूहों की उत्पत्ति के विम्ब मिलते है उनमे बप्ता[13] (नाई) तष्ट्रा अर्थात बढई या रथ निर्माता[14] भिषक अर्थात वैद्य[15] कर्मार अथवा लोहार[16] चर्मन अर्थात चमार[17] है। अथर्ववेद में रथकार कर्मार एवं सूत का उल्लेख है[18]। तैत्तिरीय संहिता मे क्षत्ता, निषाद, हश्रुकृत (बाण बनाने वाला) धन्वकृत, (धनुष निर्माता) मृगयु (शिकारी) एवं श्वनि का उल्लेख है। इसके अलावा संहिताओं मे भी पेशेवर समूहों का उल्लेख हुआ है[19]। यद्यपि ये समूह व्यवसाय एवं शिल्प के ही सूचक हैं लेकिन इनसे सम्बन्धित जातियों के निर्माणकी प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी थी ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है।

यद्यपि ऋग्वैदिक कालीन समाज में ही विभिन्न प्रकार के व्यवसायी एव शिल्पी प्रकाश मे आ चुके थे परन्तु उनका विकसित रूप उत्तरवैदिक काल से ही देखने को मिलता है। नये-नये उद्योग धन्धों के विकास के कारण विभिन्न व्यवसायगत समूहों के गठन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई और परिणाम-स्वरूप व्यवसाय पैतृक होते गये जो समाज में अलग-अलग जातियो की उत्पत्ति में सहायक कारक सिद्ध हुए। प्राचीन भारतीय समाज में आर्थिक समृद्धि हेतु कृषि के बाद सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उद्योग एव शिल्पों का ही रहा है। कारू और शिल्पियों का उल्लेख हमें वैदिक काल से ही

मिलता है (वैदिक काल में कारु एवं शिल्पियों की सूची के लिए देखिये धर्मशास्त्र का इतिहास प्रथम भाग पृष्ठ–117)। शिल्पो की सख्या में क्रमिक वृद्धि, (अर्थात् जैनग्रथ पन्नवणा मे अट्ठारह दीर्घनिकाय मे चौबीस, महावस्तु में छत्तीस के अलावा अगविज्जा, रामायण और मिलिन्दपन्हो में भी ढेर सारे शिल्पों का उल्लेख हुआ है) इसी का परिचायक है कि समाज के आर्थिक जीवन में शिल्प एवं उद्योगो का क्षेत्र एवं महत्व व्यापक हो रहा था। आर्थिक जीवन के विकास और आर्थिक प्रक्रिया के उत्तरोत्तर वृद्धि के परिणाम स्वरूप उद्योग एवं शिल्प में विस्तार हो रहा था और समाज का एक काफी बडा अंश अपनी जीविका के लिए उद्योग एवं शिल्प के ऊपर निर्भर था। इसीलिए पेशेवर वर्गों मे उद्योग एवं शिल्प से सम्बन्धित पेशेवर वर्ग या समुदाय प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण है। ऐसे उद्योग एवं शिल्प से सम्बन्धित पेशों में से कुछ महत्वपूर्ण पेशों एवं पेशेवर वर्गों का संक्षिप्त विवेचन करने का प्रयास आगे किया जा रहा है।

वैदिक ग्रंथों में लकडी के काम करने वाले लोगों का उल्लेख हुआ है[20]। कौटिल्य ने लिखा है कि राजा के स्कन्धावार निर्माणार्थ स्थान चयन हेतु सेनानायक, वास्तु निर्माण विशेषज्ञ के साथ–साथ बर्धकी का भी अभिमत समान रूप से लिया जाता था और स्कन्धावार निर्माण में बर्धकी की भूमिका भी महत्वपूर्ण मानी जाती थी, यह अर्थशास्त्र से स्पष्ट है[21]। पतजलि ने ऐसे राजतक्षकों का भी उल्लेख किया है जो कि केवल राजा या राज्य सम्बन्धी कार्यों को ही किया करते थे[22]। इसके साथ ऐसे भी बर्धकी का उल्लेख मिलता है जो अपने घर पर ही अपनी कार्यशाला मे स्वतन्त्र रूप से कार्य किया करते थे पाणिनी ने इन्हें कौटतक्ष नाम दिया[23]। ग्रमतक्ष जो गांव में अपने ग्राहक के घर जाकर रोजाना मजूरी लेकर काम करता था। प्रत्येक गांव में निवास करने वाले पांच शिल्पकारों में से बर्धकी भी था जिन्हें "पंचकारु" कहा गया

है[24]। नागेश के अनुसार कुलाल, लोहार बर्धकी, धोबी और नाई यही पांच शिल्पकार थे[25]।

नावो एव पोतों के निर्माण केसाथ–साथ भवननिर्माण आदि भी इन्हीं लोगों के द्वारा सम्पन्न हुआ करता था। अर्थशास्त्र[26] से जानकारी मिलती है कि नावो एवं पोतो के निर्माण करने से इनका राजनीतिक एव व्यापारिक महत्व बढ गया था। अजातशत्रु और चन्द्रगुप्त मौर्य के राजप्रासाद जो कि काष्ठ निर्मित थे को बनाने में इन्होने अपनी विलक्षण प्रतिभा दिखायी थी। स्ट्रैबो ने लिखा है कि पाटलिपुत्र के चतुर्दिक लकडी की दीवारें थी जिसमेंतीर चलाने के लिए मोखे बने हुए थे।

जातको से जानकारी मिलती है कि वाराणसी काष्ठ व्यवसाय का ख्याति प्राप्त केन्द्र बन चुका था। जातक मे वाराणसी के पास स्थित एक ऐसी विशाल वस्ती का नाम आया है जिसमें केवल एक हजार बढई रहते थे[27]। बलिकासित जातक से जानकारी मिलती है कि पांच सौ बर्धकियों के समूह द्वारा बडे बडे बल्ले एवं पटरे तैयार करने के लिए नदी पार कर जंगल में प्रवेश करना पड़ा था[28] महाउमग्ग जातक से भी ऐसी ही जानकारी मिलती है जिसमें एक वर्णन मिलता है कि तीन सौ पोतो के साथ साथ शहर बसाने के लिए भवनों के निर्माणार्थ लकडी जगलों से प्राप्त की गयी और इसके लिए तीन सौ वर्धकी जंगल गये थे। ऐसा लगता है कि इनका महत्व समाज मे था क्योंकि राजप्रासादों, भवनों एवं पोतों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने से उनकी सामाजिक आर्थिक महत्ता में अवश्य ही बढोत्तरी हुई होगी। राजवर्धकी को दो हजार पण वेतन मिलता है[29]। जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि वर्धकी राजकार्यों के लिए ही नियुक्त किये जाते थे उनकी आर्थिक दशा अवश्य ही अच्छी रही होगी यह बात बर्धकियों द्वारा बौद्धभिक्षुओं को उपहार स्वरूप दी गई अनेक गुफाओं, स्तंभपट्टो, ताबूतों आदि से प्रमाणित है[30]।

औद्योगिक विकास के साथ–साथ धातुशिल्पियों का भी महत्व बढ गया था। मिलिन्दपन्हों मे लोहा, सोना, शीशा, टिन, तांबा बनाने वालों का उल्लेख हुआ है[31]। धातु शिल्पी बढई और लोहार दोनों के लिए कुल्हाडी, आरा, हथौडा और छेनी बनाने के साथ–साथ कृषि कार्य में काम आने वाले उपकरणों यथा फाल,कुदाल आदि का भी निर्माण करता था[32]। पालिग्रंथों मे लोहे के बने फालों की चर्चा आयी है। कृषि केविकास के साथ खेती मे धातुओ के बने उपकरणों का प्रयोग व्यापक स्तर पर होने लगा था जिसकी जानकारी हमे पुरातात्विक साक्ष्यों से मिलती है। कौशाम्बी[33], तक्षशिला[34] , बोधगया[35], तिन्नेवली[36], हस्तिनापुर[37], रंगमहल[38], (उत्तरी विहार) से हमे विभिन्न प्रकार के धातुओ से बने उपकरणों की जानकारी मिली। निश्चित रूप से ही यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक एवं कृषि के विकास में आर्थिक सम्पन्नता को बनाये रखने मे धातु शिल्पियो ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया क्योकि प्राप्त साक्ष्यो से इसी बात का बोध भी होता है। विनयपिटक से जानकारी मिलती है कि धातुशिल्पी घरेलू और सार्वजनिक उपयोग में आने वाले विविध सामानों का निर्माण करते थे[39]। जैन स्रोतों से भी इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि लोहार हल, भाला, खड्ग के साथ ही साथ घर मे दैनिक प्रयोग में आने वाले वर्तनों का भी निर्माण किया करते थे। जातको से स्वर्णकारो की कला के बारे मे काफी जानकारी मिलती है यही कारण है कि विशाखा की शादी के अवसर पर स्वर्णाभूषण बनाने वाले पांच सौ स्वर्णकारों को आमंत्रित किया गया था[40]। मज्झिम निकाय से भी स्वर्णकारों की दक्षता का बोध होता है[41]।

धातुशिल्पियों की आर्थिक स्थिति कैसी थी इसके बारे में साक्ष्यों की कमी महसूस होती है फिर भी ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि उनकी आर्थिक स्थिति कोई खराब नहीं रही होगी। कहीं कहीं धातु कर्मियों के द्वारा दान का भी उल्लख मिलता है।[42] हिरण्यकारों द्वारा दान का भी उल्लेख हमें अभिलेखिक साक्ष्यों से ही

प्राप्त होते है[43]। आर. एस शर्मा ने कुछ लोहारो को गहपति के रूप में मानने का प्रयास किया और यह कहा कि यदि साधन सम्पन्न व्यक्ति गहपति हो सकता है तो संभव है कि चुद लोहार जिसने गौतम बुद्ध तथा उनके अनुयायियों को शानदार भोजन कराया था, जैसे धनवान शिल्पी गहपति थे। यही बात एक हजार लोहारों के गाव के उस प्रधान के बारे मे भी सत्य हो सकती है जिसने बोधिसत्व से अपनी कन्या का विवाह रचाया[44]।

वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित लोगों को तन्तुवाय नाम दिया गया[45]। सूती, ऊनी, रेशमी सभी प्रकार के वस्त्र इन्हीं लोगों द्वारा तैयार किए जाते थे। वस्त्र काफी अच्छे किस्म के तैयार किए जाते थे जिनकी ख्याति जगत् प्रसिद्ध थी। प्लिनी ने भारतीय सूती कपडे की तुलना अंगूरी लता से की है[46]। सिकन्दर को मालवों द्वारा मिलने वाले उपहार मे सूती वस्त्रों की बहुलता थी। अर्जुन को मिलने वाले उपहारों में ऊनी वस्त्रो की संख्या ज्यादा थी[47]। कम्बोज नरेश ने युधिष्ठिर को काफी अच्छी किस्म के ऊनी वस्त्र भेट की थी[48] रामायण में उल्लिखित है कि रावण की पत्नी सोते समय सिल्क के बने कपडे धारण करती थी[49]। सीता को जब रावण भगा ले जा रहा था उस समय उनके शरीर पर रेशमी वस्त्र ही थे[50] राजा जनक ने सीता को दहेज में काफी रेशमी वस्त्र ही दिया था[51] इन सभी प्राप्त साक्ष्यों से लगता है कि बुनकरों द्वारा तैयार किए गये वस्त्रों का प्रयोग काफी व्यापक रूप में होता था और इसके द्वारा निर्मित वस्त्रो की किस्में काफी अच्छी होती थी। लेकिन बुनकरों की आर्थिक स्थिति के बारे मे प्राप्त साक्ष्य इस बात का बोध कराते हैं कि उनकी आर्थिक दशा कोई बहुत खराब नही थी क्योंकि उनके द्वारा दान में दी गयी गुफाओं से यह बात प्रमाणित होती है[52] इसके साथ ही साथ उत्कीर्ण लेखों में इन्हें उदार उपासक कहा गया है जिससे यह लक्षित होता है कि इनके अपने समृद्ध वर्ग बन गये थे। नासिक लेख से पता चलता है कि वुनकर संघ के पास जब रुपया जमा किया जाता था तब उनके द्वारा चुकायी

जाने वाली दरे प्रतिमास एक से लेकर 3/4 प्रतिशत तक होती थी[53] निश्चित रूप से वुनकरो की आर्थिक स्थिति मे आपेक्षित सुधार हुआ था क्योंकि जातकों से तो उनकी दयनीय दशा का ही आभास मिलता था जहा राजगृह शहर के बाहर की सडकों पर उन्हे हीन रूप मे देखा गया था[54] कुछ वुनकरो की आर्थिक दशा काफी सोचनीय रही होगी उसे भी नकारा नहीं जा सकता लेकिन शिल्पी होने के नाते इनके द्वारा निर्मित वस्तुओ की माग अवश्य रही। वस्त्र काफी मंहगे हुए करते थे इसके भी प्रमाण सुलभ है क्योकि एक नारी ने सौ मुद्रा खर्च करके एक लाल परिधान खरीदा था[55]। इनके ऊपर राज्य की तरफ से भी कर लगता था क्योकि कहा गया है कि वे ग्यारह पल का भुगतान करे और चूक होने पर बारह पल देवे[56]। बुनकर स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे[57] लेकिन ऐसे भी प्रमाण मिलते है जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि साधन सम्पन्न गृहपतियो के पास अपने बुनकर होते थे जो उनके लिए कपडे बुनते थे। उसके बदले इन्हे मजदूरी क्या मिलती थी इसका उल्लेख हमें नहीं मिलता[58]।

जातको में कुलाल का भी उल्लेख एक महत्वशाली व्यवसायी वर्ग के रूप में हुआ है जो मिट्टी के वर्तनों को तैयार करने का काम करते थे[59] मिट्टी गूंथने के बाद ही कुलाल चाक पर अपने हाथ से विभिन्न प्रकार के थाली तस्तरियों, कटोरी आदि का निर्माण करते थे[60] कुलालों द्वारा निर्मित बर्तनों की मांग समाज मे हर प्रकार के लोगों को रही होगी। राजकुमारों को खेलने के लिए खिलौने और मिट्टी के वर्तन भी इन्हीं के द्वारा तैयार किए जाते थे[61] ऐसा उल्लेख मिलता है जब राजा को उपहार स्वरूप कुछ विशेष किस्म ऐसे ही पात्र प्रकार भेंट किए गये, राजा ने उस कुलाल को हजारों मुद्राएं दी[62]। कुलालों की आर्थिक दशा का आभास इन्हीं साक्ष्यो से हो जाता है कि जनता की मांग इतनी ज्यादा थी कि स्थानीय लोगों की मांगों को पूरा करने के बाद कुलाल खच्चरों पर बर्तनो को लादकर बेचने के लिए बडे बडे नगरों की बाजारों में जाते थे। तक्षशिला की बाजार में बेचने के लिए ले गये एक

कुलाल का उल्लेख हमे बौद्धसाहित्य में मिलता है[63] इससे उनकी बेहतर आर्थिक दशा की ही जानकारी होती है। जैनग्रथो से भी जानकारी मिलती है कि पलासपुर निवासी कुलाल सदलपुत्त के पास बर्तनों की पाच सौ दुकानें थी जहा पर सैकडों लोग काम किया करते थे[64] इसके अलावा ऐसा भी प्रकरण बौद्ध साहित्य में मिलता है कि बौद्ध भिक्षुओ को रहने के लिए कुलाल ने हाल का निर्माण कराया था[65] इन तमाम साक्ष्यों से कुलाल की आर्थिक दृष्टिकोण से सम्पन्न होने की ही बात का पता चलता है। आर.एस शर्मा ने सधालपुत्त जैसे सम्पन्न कुलाल को गहपति माना और कहा कि यदि साधन सम्पन्न व्यक्ति ही गहपति हो सकता है तो उसका भी गहपति के रूप में उल्लेख उचित आवश्यक लगता है[66] सम्पन्न कुलालो के अलावा गरीब कुलाल भी रहे होंगे, इसे भी नकारा नही जा सकता लेकिन इतना निश्चित ही है कि जिन्होंने अपने व्यवसाय में दक्षता प्राप्त कर ली थी और वैसे ही अपने व्यवसाय में मेहनत भी करते थे, उनकी आर्थिक स्थिति अवश्य ही अच्छी रही होगी, सातवाहन लेखों में काफी सम्पन्न कुंभकारों का उल्लेख हुआ है जिनके पास रुपया जमा किए जाते थे[67] वेतन पर काम करने वाले भी कुछ कुलाल थे क्योंकि राजकुलाल शब्द से ऐसा ही बोध होता है[68]। जातकों में भी राजकुलाल शब्द का उल्लेख आया है[69]।

इसके अलावा नागरिकों के वस्त्रों और श्रृंगार के विभिन्न प्रसाधन सामग्रियो का निर्माण करने वालों का भी समाज में आर्थिक कारणो से महत्व था क्योकि इनके द्वारा कारीगरीकृत कामों की मांग ज्यादेतर समाज के धनी लोगों को ही हुआ करती थी। इनमे चित्रकारों, गन्धी, चांदी पर काम करने वालों, पीतल पर काम करने वालों, रंगरेजो आदि का उल्लेख काफी महत्वपूर्ण लगता है[70]।

सामाजिक ढॉचे मे कारीगरों एवं शिल्पकारों का आर्थिक दृष्टिकोण से अपना महत्व था। पाणिनी ने प्रत्येक गांव में निवास करने वाले पांच प्रकार के कारुओं का

उल्लेख किया है[71] देहात और शहर से जुडे हुए कारीगरों के आर्थिक स्तर में भी काफी अंतर रहा होगा, ऐसा लगता है। गाव की आवश्यकताओ की पूर्ति स्थानीय कारीगरो के ही माध्यम से हो जाया करती थी जिन धातुओ का उत्पादन छोटे पैमाने पर स्थानीय स्तर पर हुआ करता था। इनसे जुडे कारीगर केवल उन्हीं वस्तुओ के उत्पादन मे व्यस्त रहते थे जिनकी मांग स्थानीय थी। दूसरी ओर, इस काल से ही शहरो की स्थापना के ज्यादे प्रमाण मिलते है, नगरो के विकास के कारण शहर मे बसने वाले लोगो की मांग का क्षेत्र काफी व्यापक था और शहरी इलाको के ही अनुसार बडे–बडे उद्योगो को विकसित होने मे काफी बल मिला और यही कारण था कि शहरी इलाकों मे वस्तुओ के उत्पादन का पैमाना काफी वृहद था[72]।

कारीगरो और शिल्पियों की सामाजिक स्थिति, कम से कम मनुस्मृति मे इस प्रकार का इगित है, द्विज सेवा में रत शूद्र से निम्न थी क्योंकि यह कहा गया है कि यदि कोई शूद्र द्विजों की सेवा से अपनी जीविका नहीं चला सकता तो ऐसी परिस्थिति में उसे शिल्प कार्य से जीवन निर्वाह करना चाहिए[73]। ऐसी परिस्थिति में इस प्रकार का कथन कि कारीगरों के हाथ हमेशा पवित्र रहते है,[74] का वास्तविक तात्पर्य यह नही था कि कारीगरो की सामाजिक स्थिति अच्छी (पवित्र) मानी जाती थी, बल्कि इसका वास्तविक तात्पर्य यह था कि कारीगरों की हाथ की बनायी गयी वस्तुओं को अस्पृश्य अपवित्र, करार करना असंभव था। सामाजिक स्थिति चाहे जैसी रही हो इतना तो निश्चित है कि अध्ययन काल में शिल्पियों की संख्या में अपेक्षाकृत बढोत्तरी ही हो रही थी और उनकी आर्थिक स्थिति में पहले की अपेक्षा अवश्य ही सुधार हो रहा था यह बात बढ़इयों, लोहारों, गन्धियों, जुलाहों, सुनारों और धर्म व्यवसायियों द्वारा बौद्ध भिक्षुओं के उपहार स्वरूप दी गयी अनेक गुफाओं, स्तंभों आदि से प्रमाणित है। इसके अतिरिक्त उत्कीर्ण लेखें में रंगसाजों, धातु और हाथी दांत के काम करने वालों, जौहरियों, मूर्तिकारों के भी कार्य दिखलाई पड़ते है[75]।

कही गधियों और स्वर्णकारो को बार–बार उदार उपासक भी कह गया है जिससे लक्षित होता है कि शिल्पियों के कई समृद्ध वर्ग बन गये थे[76]।

राज्य की तरफ से कारीगरों की सुरक्षा के व्यापक प्रबन्ध की जानकारी मिलती है। मनु का कथन है कि शिल्पियो के घर घूमने–फिरने तथा एक स्थान मे रहने वाले चोरो से बचाने के लिए राजा पहरेदारों की नियुक्ति करें[77]। विदेशी विद्वानों के भी कथन यहा उल्लेखनीय जान पडते है जहॉ यह कहा गया है कि भारत में उन लोगो को कडे दण्ड दिये जाने का विधान था जो कारीगरो के अंगको नुकसान पहुॅचाने की चेष्टा करते थे[78]। स्ट्रेबो ने भी ऐसा ही लिखा है[79]। शिल्पियों को राज्य की ओर से बुनाई[80] खनन[81] भण्डारपालन[82] आयुध निर्माण[83] धातु कर्म[84] आदि कार्यों मे लगाया जाता था। भारी संख्या में वुनकरों को भी राज्य की तरफ से नियोजित किया गया था[85] यद्यपि उससे पहले वुनकर गहपतियों के ही अधीन काम करते देखे गये थे।

कुछ विशेष शिल्पियों को राज्य की तरफ से निवास की भी व्यवस्था थी, ऐसा अर्थशास्त्र मे वर्णन मिलता है। दुर्ग निवेश विधान से पता चलता है कि शिल्पी राजभवन के उत्तर में रह सकते है। ऊनी–सूती वस्त्र, बांस की चटाई चमडा, कवच, हथिया और म्यान बनाने वालों को राजभवन के पश्चिम की ओर निवास स्थान दिया जाय [86] नगर के बाहर निवास करने वाले शिल्पियों पर राज्य की तरफ से निगरानी रखने का भी विधान किया गया था।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कथक 2 3: 37 9: 48.1· मैत्रेयानि, 1.2.2

2. शतपथ 14.9 9.33·

3. अत्रेय ब्राह्मण VI. 5 27

4. टी0 पी0 भट्टाचार्या, ए स्टडी ऑफ वास्तुविद्या, पृष्ठ–26

5 मोनियर विलियम्स – इण्डियन विजिडम, पृष्ठ–468

6 ऋग्वेद X 72.2

7. ऋग्वेद X 72.2 सन्दर्भ बी0 एस0 अग्रवाल (इण्डियन आर्ट) पृष्ठ–40

8. ऋग्वेद IV, 35.6:

9 अथर्ववेद III, 5.6:

10. मज्झिम निकाय

11 मिलिन्द प्रश्न 331

12 हारनर आई0 वी0 (tr) बुक ऑफ डिसीपलीन II 176

13 ऋग्वेद 10.142.4

14. वही 1.61.4, 7.32.20, 9.112, 10.119.5

15. वही 9 11.1

16. वही 10.72.5

17. वही 8.5.38

18. अथर्ववेद 3.5 6.

19 काठक संहिता–17.13

20. ऋग्वेद 1 61 4

21 अर्थ 10 1.1 , 10 1 17

22 महाभाष्य

23 , अष्टाध्यायी, 5.4.95.

24. वही, 1 1 48.

25 देखिये, राय जयमल, पूर्वोधृत, पृष्ठ–113.

26. अर्थ0, 2 28.

27. जातक, 4 159

28 जातक 2 संख्या–156

29 अर्थ0, 5.3 देखिये काणे, धर्मशास्त्रों का इतिहास पृष्ठ–648.

30. शर्मा, आर0 एस0, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ–179.

31. मिलिन्दपन्हो 5.4., पृष्ठ 223.

32. शर्मा, आर0 एस0 शूद्रो का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ–86.

33. शर्मा, जी0 आर0, इक्सवेसंस एट कौशाम्बी, पृष्ठ–46–48.

34. मार्शल तक्षशिला 2, पृष्ठ–534–35.

35 देखिए आद्यया, अरली इन्डियन इकोनामिक्स, पृष्ठ–50.

36 वही.

37 लाल, इक्सवेसन्स एट हस्तिनापुर, पृष्ठ–95–99

38 देखिए, रीध, रंगमहल, पृष्ठ–171, देखिए शर्मा, आर0 एस0, लाइट आन अरली इण्डियन सोसाइटी इकोनामी, पृष्ठ–60 : कौशाम्बी, डी0 डी0 दि कल्वर एण्ड सिविलाइजेशन आफ एशिएण्ट इण्डिया इन हिस्टारिकल आउट लाइन, पृष्ठ–89 अग्रवाल, वी0 एस0 . इण्डिया एज नोन टू पाणिनी, पृष्ठ–189.

39 विनयपिटक, 1.238

40. वर्लिगम, वुद्धिस्ट लीजेण्ड्स 29 2.65–66

41 मज्झिम निकाय, 3 102

42 एपि0 इ0, 53.54

43 वही सख्या 1333.1033 1179,1297, 1239 आदि

44 शर्मा, शूद्रों की प्राचीन इतिहास, पृष्ठ–85.

45 अष्टाध्यायी 6 2.76

46. प्लिनी, हिस्ट्री ऑफ प्लाट्स, 4.8.10

47 सभापर्व

48 शान्तिपर्व 21.2

49. रामायण, 5.9.53–54 : 5.9.60

50. रामायण, 3 52.16.

51 रामायण, 1.5.

52. शर्मा, आर0 एस0, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ–176

53. ल्यूडर्स लिस्ट संख्या 1133.

54 वर्लिगम, पूर्वोधृत 29.2.86–87.

55 वही, 28.1 249

56. धर्मकोश 1 3.1927

57 पाणिनी आन पंतजलि ग्रामर 1 4.54.

58 शर्मा, शूद्रो का प्राचीन इतिहास पृष्ठ–87

59. जातक, 3 289.

60 वर्लिगम–पूर्वोधृत, 30.3.44.

61 जैन, पी0 सी0 लेवर इन एशिएण्ट इण्डिया पृष्ठ 99.

62 वही, पृष्ठ–99.

63. वर्लिगम, पूर्वोधृत, 28.1.167.

64. जैन, जे0 सी0 पूर्वोधृत 101

65. वर्लिगम, पूर्वोधृत, 28.1.167.

66. शर्मा शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ–85

67 ल्यूडर्स लिस्ट सं0 1133.1137.

68. पाणिनी की व्याकरण वृत्ति, 6.2.63.

69. जातक, 5 290–92.

70 मिलिन्द पन्हो, पृष्ठ–324.

71. राय, जयमल पूर्वोधृत, पृष्ठ–113.

72. निगम, एस0 एस0, इकोनामिक आरगनाइजेशन इन एशिएट इण्डिया, पृष्ठ–122.

73 अशक्नुवस्तु शुश्रषा शूद्र कर्तु द्विजन्मनाम्।
पुत्रदारत्ययं प्राप्ता जीवेत्कारूक कर्मभि.।।
ये कर्मभि प्रचरिते शुश्रूष्यन्ते द्विजातय।
तानि कारूककर्माणि शिल्पानि विविधानि च।।

मनुस्मृति 10–99,100

74. नित्यं शुद्धः कारूहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम्।
ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः।।

मनुस्मृति 5.129

75. ल्यूडर्स लिस्ट संख्या, 32, 53, 54, 234, 857, 1005, 1129.

76. शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ–177.

77. जीर्णोद्यानान्यर न्यानि कारूकावेशनानि च।
शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्यु पवनानि च।
एवं विधन्नृपों देशान्गुल्मैः स्थावरजङमै.।
तस्कर प्रतिबेधार्थ चारै श्राप्यनुचारयेत्।।

मनुस्मृति 9.265–66

78. मजूमदार, आर0 सी0, क्लासिकल एकाउण्ट्स ऑफ इण्डिया, पृष्ठ–455.

79. निगम, एस0एस0, इकोनामिक आरगनाइजेशन इन एशिएण्ट इन्डिया, पृष्ठ–271

80 अर्थ0, 2 23

81 वही, 2 12

82 वही, 2 15

83 वही, 2 18

84 वही, 2 17

85 शर्मा आर0 एस0 शूद्रो का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ–149

86 अर्थ0 2 4.

व्यावसायिक समूह एवं शिल्पियों की गति विधियां

व्यावसायिक समूह एवं शिल्पियों की गतिविधियां

व्यवसाय व शिल्पों की संख्या, प्रकार और प्रकृति आर्थिक और सामाजिक विकास की स्थिति पर निर्भर है। समाज का आर्थिक विकास और विस्तार जितना ही होता है, शिल्पो एव व्यवसायों की सख्या मे उतनी ही वृद्धि होती है। श्रम का विभाजन भी उतना ही अधिक होता है एवं श्रम की कार्य कुशलता का स्वरूप भी उत्तरोत्तर उतना ही जटिल (Complex) होता रहता है। वैदिक काल के अन्त और वेदोत्तर काल के प्रारम्भ से मनुस्मृति काल तक भारतीय सामाजिक व आर्थिक जीवन में कुछ मौलिक परिवर्तन होने लगे थे। उद्योग, व्यापार व कृषि सभी क्षेत्रों मे पहले की अपेक्षा विकास की प्रक्रिया दृष्टिगोचर होने लगी थी। प्रशासनिक एवं राजनीतिक ढाचा भी पहले की अपेक्षा कही अधिक जटिल बन रहा था। ऐसी स्थिति में व्यवसायो के प्रकार में वृद्धि होना स्वाभाविक बात थी।

प्राचीन भारतीय जीवन मे वृत्ति एवं व्यवसाय का बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसीलिए भारतीय समाज में व्यवसायों के प्रकार एवं स्वरूप के प्रश्न वर्ण और जाति से भी प्रभावित होते रहे हैं। यही कारण है कि इन प्रश्नों पर स्वतन्त्र परिप्रेक्ष्य में विचार करना सम्भव नहीं लगता। स्वाभाविक रूप से ही इन प्रश्नों के विवेचन में वर्ण और जाति व्यवस्था के प्रभाव, व्यवसायों के प्रकार और सापेक्षिक गुरुत्व के साथ वर्ण और जाति व्यवस्था के सम्बन्ध इत्यादि प्रश्न भी विचारणीय हो जाते हैं। जितने व्यवसायों का उल्लेख हमे मिलता है उनको निश्चित रूप से वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकृत करना कठिन कार्य है क्योंकि किसी भी वर्ग के लोग अपनी क्षमतानुकूल किसी न किसी व्यवसाय से अपने को सम्बद्ध किए हुए थे। फिर भी सामान्य रूप से इनको

निम्नलिखित वर्गों मे रखा जा सकता है–

1. कृषि से सम्बन्धित व्यवसाय

2 राज्य–प्रशासन से सम्बन्धित व्यवसाय

3 उद्योग–कलात्मक कृतियो एवं व्यापार से सम्बन्धित व्यवसाय

4 धार्मिक क्रिया–कलापो से सम्बन्धित व्यवसाय

भारतीय समाज के आर्थिक समृद्धि में कृषि का स्थान सर्वोच्च स्तर पर था। ऐसा लगता है कि वैदिक काल में आर्थिक दृष्टिकोण से कृषि और वाणिज्य के आनुपातिक महत्व में कृषि का ही महत्व समधिक था। ऋग्वेद मे एक रोचक कथा प्राप्त होती है जिसकी व्यंजना कृषि के आर्थिक महत्व की ओर इंगित करती है। जुए खेलने वाले को एक आदमी कहता है कि तुम इस काम को छोडकर अपना समय खेती कर्म मे लगाओ, निश्चित रूप से तुम धनी हो जाओगे।[1] पर उत्तर वैदिक काल मे व्यापार और उद्योग के विकास के कारण इस अनुपात में सम्भवतः परिवर्तन हुआ। यद्यपि भारतीय सामाजिक आर्थिक व्यवस्था सदा ही मुख्य रूप से कृषि–निर्भर रही है फिर भी उत्तर वैदिक काल में कृषि और वाणिज्य में व्यक्तिगत दृष्टिकोण से जीविका के रूप मे कृषि से वाणिज्य अधिक आकर्षक बन गया था। गौतम बुद्ध के कथन भी यहां स्मरणीय जान पड़ते हैं जहा उन्होंने वाणिज्य व व्यापार को कृषि से कही अधिक श्रेष्ठ माना है क्योंकि इसमें लाभ ज्यादा होता है और समय एवं समस्यायें भी कम लगती है[2]। फिर भी जीविका के लिए कृषि के ऊपर निर्भरशील व्यक्तियों की संख्या समाज में अन्य पेशों से कहीं अधिक थी। कात्यायन और पतंजलि के अनुसार कृषि कार्य का अर्थ सिर्फ हल चलाना नही है, बल्कि खेती से जुडे हुए वे समस्त कार्य है जिससे फसल तैयार होती है, यथा–बीज, खेती में प्रयुक्त होने वाले औजार, मवेशी और श्रमिक[3]।

उत्तर वैदिक कालीन साक्ष्य के अनुसार कृषि कर्म केवल वैश्य के लिए ही विहित बतलाया गया है[4]। लेकिन समय के अन्तराल के साथ–साथ कृषि के आर्थिक महत्व को समझते हुए तथाकथित वैश्यो के अलावा समाज के अन्य वर्गों द्वारा भी कृषि कर्म को परोक्ष एव प्रत्यक्ष रूप से अपनाया गया, ऐसा लगता है। सुत्तनिपात मे एक नाला निवासी ब्राह्मण कलि भारद्वाज का प्रसंग आया है जिसके पास पाच सौ हल और काफी सख्या मे जुताई करने के लिए बैल भी थे[5]। जातको से यह बात पुष्ट होती है कि ब्राह्मण स्वयं खेती में लगे रहते थे और स्वयं ही खेत की जुताई भी करते थे[6]। सालिकेदार जातक से पता चलता है कि सालिण्डय का निवासी कोसियगोन्त के पास हजारों एकड जमीन थी जहां वह चावल की खेती करता था। उसने पांच सौ एकड़ जमीन अपने निजी आदमियों के अधिकार में दे रखी थी और शेष पांच सौ एकड़ जमीन मे स्वयं मजदूर रखकर खेती करवाता था जो कि पास ही झोपडियो में निवास करते थे[7]। इसके अलावा ऐसे भी खेतिहर ब्राह्मणों का उल्लेख है जिनके पास खेत की जुताई करने के लिए केवल एक ही बैल था[8]। सोम–नन्द–जातक से भी ऐसे ब्राह्मण की जानकारी होती है जिसके पास अस्सी करोड की भू–सम्पत्ति थी[9]। काम जातक से भी प्रमाण मिलता है कि ब्राह्मण स्वयं जगल काटकर जमीन को खेती लायक बना रहा था[10]। बौद्ध साहित्य में खेती से सम्बन्धित क्षत्रियों का भी उल्लेख है। सोमदत्त जातक में एक रोचक कथा मिलती है जहा एक किसान ब्राह्मण ने अपने दो बैलों में से एक बैल के मर जाने पर अपने खुशामदी पूर्ण व्यवहार से राजा के द्वारा सोलह बैल प्राप्त किया[12]। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे ऐसे शूद्रों की विवेचना की है जो खेती से जुड़े हुए थे और राज्य की तरफ से जिन्हें खेती करने के लिए जमीन भी सुलभ करायी जाती थी[13]। ऐसा लगता है कि कुछ शूद्र वर्ण के लोगों के पास काफी बड़ी भू–सम्पत्ति हुआ करती थी। मरवादेवजातक में राजा द्वारा एक नापित को ऐसे ग्राम देने का विवरण मिलता है

जिससे लक्षस्वर्ण मुद्रा की आमदनी होती थी[14]। इसी प्रकार नीमीजातक से भी राजा द्वारा नापित को गाव दान करने का उल्लेख है[15]।

खेती से जीविकोपार्जन करने वाले मनुष्यो में खेती में श्रम कौन कर रहा था, इसके आधार पर चार श्रेणियो मे रखा जा सकता है। प्रथम श्रेणी मे ऐसे जमीदारो का उल्लेख किया जा सकता है जिनके पास सामान्य रूप से काफी अधिक भू–सम्पत्ति हुआ करती थी और जो कभी भी स्वय खेती का कार्य नही करते थे बल्कि या तो मजदूरो से कटाई मे या अन्य किसी अनुबन्ध के आधार पर ही दूसरो से खेती का कार्य सम्पन्न करवाते थे। दूसरी श्रेणी में ऐसे किसान, जो खेत के मालिक हुआ करते थे और जो स्वयं खेती का कार्य भी करते थे जिन्हें किसान मालिक कहा जा सकता है। यह भी असभव नही है कि ऐसे किसान मालिकों मे से अधिक भू–सम्पति वाले वे किसान जिनके पास स्वय जुताई करने के अलावा भी जमीन हुआ करती थी, ऐसी परिस्थिति में शायद वे दूसरे मजदूरों या अन्य किसानों से अपनी खेती का काम करवाते रहे हों। तीसरे श्रेणी में बटाईदार किसानों का उल्लेख किया जा सकता है जो दूसरों की जमीऩ में उपज की बटाई के आधार पर काम करते थे। यह भी असम्भव नहीं है कि कुछ बटाईदारों में काम करने वालों के पास स्वयं की जमीन न रही हो। चौथे श्रेणी में भूमिहीन किसानो को रखा जा सकता है। यद्यपि सम्भवतः इनकी संख्या बहुत अधिक नहीं थी फिर भी कुछ ऐसे प्रमाण हैं जिनसे प्रतीत होता है कि कुछ खेतिहर मजदूर दास भी हुआ करते थे।

बौद्ध ग्रन्थों एवं जातकों से ऐसे जमीदारों का उल्लेख मिलता है जिनके पास काफी भूमि थी और वे साधन सम्पन्न माने जाते थे। यद्यपि ऐसे लोग कभी–कभी अपने व्यापार के लिए शहरों में ही निवास करते थे। अपनी जमीन की देखभाल करने के लिए या तो स्वयं बीच–बीच में गांवों में जाया करते थे या अपने कुछ कर्मचारियों

के माध्यम से अपनी जमीन की देख–रेख करते थे। ये लोग अपनी खेती का काम दास और कर्मकारों (खेतिहर मजदूरों) या तथाकथित बर्धिकों से कराया करते थे। प्राचीन बौद्ध साहित्य में मेण्डक एक बहुचर्चित व्यक्ति है। उसकी अपार धन सम्पत्ति का उज्जवल वर्णन हमे कई स्थानों पर मिलता है। वह विशाल भू–सम्पत्ति का भी मालिक था। उसके पास एक हजार से भी ज्यादे गायें थी जिन्हें चराने के लिए ढेर सारे चरवाहे भी थे। पर स्वय भद्दियनगर मे रहा करता था उसके द्वारा अपने यहाँ काम करने वाले श्रमिको को एक किशत मे छः महीने का वेतन देने का उल्लेख भी हमे प्राप्त होता है। इन सबसे यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मेण्डक अपनी जमीन की देखभाल और उसमें कृषि–कार्य कुछ कर्मचारियों और मजदूरों के माध्यम से ही करवाया करता था[16]। सामजातक में श्रावस्ती के एक बहुत ही धनवान व्यापारी का उल्लेख है साथ ही साथ वह एक बहुत बडा जमींदार भी था और वह अपनी जमीन मे खेती का कार्य दूसरों के ही माध्यम से करवाया करता था। ऐसे उदाहरण से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि बहुत से श्रेष्ठि और गहपति जो शहरों में रहा करते थे, गांव मे उनकी काफी भू–सम्पत्ति हुआ करती थी। ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि इनका मुख्य पेशा कृषि नहीं था। इसलिए कृषि के कार्यों या उसका सचालन स्वयं नहीं करते थे। ऐसे लोग अपनी जमीन किसी अनुबन्ध के आधार पर उन लोगों को दे दिया करते थे जो उनमे खेती का कार्य कर सकें[17]। श्रावस्ती निवासी अनाथपिण्डक का भी उल्लेख भी इसी रूप में किया जा सकता है जो कभी कभी गांवों में कर वसूलने के ही निमित्त जाया करते थे[18]। मेरी जातक में ऐसे ही व्यापारियों का उल्लेख है[19]। महाउमग्ग जातक से भी जानकारी मिलती है कि महाशोध ने अपने आदमियों को उन गांवों से राजस्व प्राप्त करने के लिए भेजा जाता था। जो उसे राजा कुलानी द्वारा प्राप्त गाव थे[20]। सालिकेदार जातक में सालिण्ड्य निवासी कोसियगोत्त का उल्लेख है जिसके पास हजारों एकड़ जमीन थी जहां वह चावल की खेती करता था। पांच सौ

एकड जमीन उसने अपने निजी आदमियो के अधिकार मे किसी अनुबन्ध पर दे रखी थी और शेष पांच सौ एकड जमीन मे स्वय भाडे मजदूर रखकर खेती कार्य सम्पन्न करवाता था[21]। ऐसे बडे किसानो का उल्लेख अन्यत्र भी बौद्ध साहित्य मे देखा जा सकता है जिनके पास अस्सी करोड की सम्पत्ति थी[22]। सत–पन्त जातक से काफी बडी भू–सम्पत्ति वाले किसान की जानकारी होती है जो लोगो को हजारो–हजारों मुद्राए कर्ज मे भी देता था[23]। बौद्ध साहित्य के अलावा जैन साहित्य से भी ऐसे ही प्रकरण प्राप्त होते हैं बनियागाम का निवासी आनन्द के पास काफी संख्या में हल, बैलगाडिया और मवेशी थे। किसी पराशर भी अपार धन–सम्पत्ति वाला किसान था[24]। बौद्ध साहित्य मे ऐसे किसानों को गहपति कहा गया और ऐसा कहने का मुख्य आधार अपार धन सम्पदा ही रही होगी[25]। ऐसे सम्पन्न भू–स्वामी सिर्फ बडे व्यापारी या उच्च श्रेणी के ब्राह्मण–क्षत्रिय मात्र नहीं होते थे, कुछ तथाकथित निम्नवर्ग के लोगों के पास भी सम्भवतः कभी–कभी प्रचुर भू–सम्पदा हुआ करती थी। ऊपर हमने नीमी जातक में वर्णित राजा द्वारा अपने नापित को ग्रामदान करने का उल्लेख किया है। भरवादेव जातक में भी नापित को इसी प्रकार ग्रामदान करने का उल्लेख मिलता है। यह ग्राम बहुत छोटे ग्राम नही रहे होंगे क्योंकि भरवादेव जातक के अनुसार दान में मिले हुए गांव से नापित को लक्षस्वर्ण मुद्रा की आमदनी होती थी। यद्यपि इस वर्णन में कुछ अतिरंजन पूर्ण बातें अवश्य हैं फिर भी इस अतिशयोक्ति के बावजूद भी यह स्पष्ट है कि यह नापित बहुत बडा जमीदार हो गया था[27]। इसी प्रकार मौर्यकाल मे सीताध्यक्ष का उल्लेख मिलता है जो कृषि कार्य करवाता था। मौयोत्तर काल मे सातवाहनों द्वारा भूमिदान तथा ग्रामदान का उल्लेख मिलता है। इस काल में कृषि कर्म वैश्य वर्ग के लोग ही करते थे। लोहार कृषि उपकरण बनाता था।

राज्य प्रशासन से सम्बन्धित अधिकारियों एवं कर्मचारियों की राज्य की तरफ से जमीन दान में दी जाती थी। मनुस्मृति और महाभारत में भी राजकीय कर्मचारियों

को राजा से प्राप्त की जाने वाली जमीन का उल्लेख है[28]। अर्थशास्त्र में विभिन्न कार्य करने वाले राजकीय कर्मचारियों को यथा अध्यक्ष, संख्यायक, चिकित्सक, दूत, गोप, स्थानिक के अलावा हाथी एवं घोडों को प्रशिक्षित करने वाले, राज्य की तरफ से भूमि देने का प्राविधान था[29]। प्राप्त साक्ष्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे राज्य कर्मचारी जिनको राज्य से भूमिदान मे मिलती थी, उनका मुख्य पेशा कृषि नहीं था। अर्थशास्त्र के अनुसार ऐसे राजकीय कर्मचारियो को नकद वेतन भी मिलता था[30]। इन सब साक्ष्यो से ऐसा लगता है कि ऐसे राज्य कर्मचारी दूसरों के ही माध्यम से अपनी जमीन मे कृषि कार्य सम्पन्न करवाते रहे हों।

बडे जमीन मालिक जिन्हे अनुपस्थित जमीदार के नाम से विभूषित किया है[31]। बौद्ध जैन साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि ऐसे लोग अपनी आमदनी का स्रोत कृषि को नही बना रखे थे अथवा आमदनी के लिए केवल कृषि के ही ऊपर निर्भर नहीं थे बल्कि साथ ही साथ व्यापार और उद्योग को भी अपनी आमदनी का साधन बनाये हुए थे। बहुत से श्रेष्ठि, गहपति इत्यादि के पास भी काफी भू–सम्पत्ति थी इसका उल्लेख उपर दिया जा चुका है[32]। ऐसी परिस्थिति में इनको कौन से पेशेवर वर्ग में रखा जाय यह एक समस्या है।

कृषक जो स्वयं ही अपने खेतों में खेती का कार्य स्वतंत्र रूप से करते थे, किसान मालिक कहे जा सकते हैं। सोमदत्त जातक में काशी राज्य के एक ऐसे किसान ब्राह्मण का उल्लेख आया है जिसके पास अपने निजी दो बैल थे और स्वयं खेती कार्य करके अपने परिवार की जीविका चलाता था। लेकिन अचानक एक बैल के मर जाने से उसका खेती की जुताई का सारा काम रुक गया और पुनः तब शुरू हुआ जब उसने अपने खुशामदी पूर्ण व्यवहार से राजा के द्वारा सोलह बैल प्राप्त किया[33]। मनु और मिलिन्द द्वारा उल्लिखित किसान अर्थात जंगल को साफ करके खेती योग्य

बनाने वाले किसान भी किसान मालिक की श्रेणी मे ही रखे जा सकते है[34]। कौटिल्य ने अपने ग्रथ अर्थशास्त्र में भी किसानो के बारे में काफी चर्चा की है। उनका मत है कि सौ से लेकर पांच सौ बस्तियां बसाने मे एक बस्ती से दूसरी बस्ती की दूरी दो या चार मील होनी चाहिए और उनके निवासी मुख्यतया शूद्र किसान होने चाहिए। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि नई बस्तियों की भूमि को कृषि योग्य बनाकर कर दाताओ को जीवन भर के लिए दे दी जावें[35]। कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि ऐसे लोग जो अपनी जमीन मे खेती कार्य नही करते उनसे जमीन लेकर दूसरों को हस्तातरित कर दी जाय। कौटिल्य द्वारा वर्णित इन किसानों को भी किसान मालिक की ही श्रेणी में रखा जाना ठीक लगता है क्योकि ऐसे लोग स्वयं अपने हाथ से ही अपनी जमीन की जुताई करते थे और ये किसान मजदूर नहीं थे, जमीन के मालिक थे क्योंकि कर अदा करने का उत्तरदायित्व इन्हीं के ऊपर था[36]।

. गृहपति–कर्षकों का उल्लेख अर्थशास्त्र में गुप्तचर के रूप में हुआ है। इस सन्दर्भ से बिल्कुल स्पष्ट है कि ये किसान मालिक थे[37]। इसी प्रकार दुर्ग–निवेश के संदर्भ में कौटिल्य ने जो कुटुम्बियों का उल्लेख किया है वे भी इसी प्रकार के किसान मालिक थे, ऐसा प्रतीत होता है[38]। यदि क्षेत्रिक शब्द का अभिप्राय भी किसान मालिक से है[39]। जो बहुत सम्भव लगता है, तो सम्भवतः कुछ क्षेत्रिक अपने हाथ से जमीन की जुताई करने के साथ–साथ अपनी जमीन कभी–कभी बटाई या भाग में भी दूसरो को दिया करते थे[40]।

खेत की जुताई के लिए कभी–कभी कुछ किसान द्वारा बीज आदि भी कर्ज के रूप में लेना पडता था । ऐस स्वतंत्र किसानों की आर्थिक स्थिति के बारे में भी हमे बौद्ध जातको से कुछ जानकारी मिलती है जहॉ यह उल्लेख है कि साधनों की कमी के कारण कुछ किसान कभी–कभी अपने पड़ोसियों से बैल मांगकर अपनी खेती का

कार्य किया करते थे[42]। प्राकृतिक दुर्योग के कारण उत्पन्न परिस्थिति मे गरीब एवं साधन हीन किसानों को भी कर्ज लेने के लिए मजबूर होना पडता था, इस बात की पुष्टि पुत्तमठ जातक मे आयी कथा से हो जाती है जहा श्रावस्ती के एक सम्पन्न भू–स्वामी ने एक सामान्य किसान को कर्ज दिया था[43]। यहॉ तक कि कभी–कभी अपनी स्थिति को न सभाल सकने के कारण चारे के अभाव मे गरीब एवं साधनहीन किसान अपने पशुओ को जगलो मे चरने के लिए छोड दिया करते थे, ऐसा उल्लेख महाकवि जातक मे मिलता है[44]। सूखे एवं अकाल की स्थिति में किसान आपस मे मिलकर एक साथ ही राजभवन मे राजा को उलाहना भी देने गये थे, इसका भी रोचक वर्णन मिलता है[45]।

तृतीय वर्ग के कृषक जो अन्य की भूमि उपज की बटाई के आधार पर खेती करते थे। मौर्य काल मे ऐसे किसानो को राज्य की तरफ से काफी सहयोग मिला और यही कारण है कि उनकी आर्थिक स्थिति में अब परिवर्तन हो गया परिणाम स्वरूप जो अब तक केवल कृषि मजदूर थे अब उन्हें भूमि बटाईदारी में दी जाने लगी[46]। कौटिल्य ने ऐसे किसानों के लिए यह प्रस्ताव रखा कि उन्हे स्वयं कोई कठिनाई न सहकर जितना अधिक हो सके राजा को हिस्सा देवें[47]। मनु ने बटाईदार किसानों के लिए उत्पादन का आधा हिस्सा राज्य को देने की बात कही। अर्थशास्त्र और मनुस्मृति में बटाईदार किसानो को मिलने वाली जमीन में कुछ अन्तर बतलाया गया है। जहॉ कौटिल्य ने लिखा है इन्हें राज्य की तरफ से जमीन दी जाती थी वही मनु ने लिखा है कि बटाईदार कृषकों को व्यक्ति विशेष से ही जमीन प्राप्त हो जाया करती थी। ऐसे बटाईदार कृषक जिन्हें हल, बीज आदि भी दिया जाता था उन्हें उपज का सातवॉ हिस्सा दिया जाता था, ऐसा महाभारत में उल्लेख मिलता है[49]। कौटिल्य ने लिखा है कि (श्रमिकों के अभाव के कारण) खेतों की बोआई नहीं हो पाए तो खेत उन लोगों को पट्टे पर दे दिए जाएं जो आधी उपज देकर उनकी

जुताई करें[50]। जो व्यक्ति केवल शारीरिक श्रम करके ही अपनी जीविका चलाते थे ऐसे खेतिहर कर्मकारों के पास खेती के आवश्यक उपकरण यथा बीज और बैल का होना सभव नहीं लगता। ऐसे व्यक्ति उपज का चतुर्थांश अथवा पंचमांश लेना स्वीकार करते थे तो राज्य की ओर से बैल और बीज भी दिये जाते थे[51]।

भूमिहीन कृषक भी थे। लेकिन ऐसे लोग खेती कर्म द्वारा अपनी जीविका चलाते थे। तक्कल जातक में खेतों में मजदूरी पर काम करके जीविका चलाने वालो का उल्लेख हुआ है[52]। बांध नगर जातक से भी ऐसे ही गरीब आदमी की जानकारी होती है जो मजदूरी पर खेती का कार्य करते हुए ही अपनी माता की सेवा करता था[53]। जातको मे एक जगह उल्लेख मिलता है कि पूना नामक किसान जिसके पास न तो अपनी जमीन ही थी, न तो अपना घर ही था। वह अपनी जीविका कृषि–कार्य करके ही चलाता था। उसके द्वारा अपनी पत्नी से कहे गये कथन काफी रोचक लगते है कि "हे मेरी प्रियतमा! आज लोग छुट्टी का दिन मना रहे है लेकिन हम इतने गरीब है कि आज भी मजूरी में काम करने के लिए बाध्य है[54]। ऐसा ही एक अन्य भी उदाहरण मिलता है जहा ऐसे भूमिहीन किसान मजदूर का उल्लेख है जिसके पास पहनने के लिए फटे–पुराने कपडे ही थे और जो खेत की जुताई करते जा रहा था[55]। ऐसा लगता है कि खेती में बडे पैमाने पर कृषि मजदूरों को ही लगाया जाता था क्योंकि बौद्ध साहित्य में अधिक–भू–सम्पत्ति वाले ऐसे किसानों का उल्लेख है जिनका मुख्य पेशा व्यापार और वाणिज्य था लेकिन परोक्ष रूप से ऐसे अपार भू–सम्पति वाले किसान कृषि मजदूरों के द्वारा ही अपनी खेती का काम करवाते थे। मेण्डक का उल्लेख यहां काफी महत्वपूर्ण लगता है जिसके पास कृषि मजदूरों की संख्या ज्यादा थी और जो अपने श्रमिकों को एक ही किशत में छः महीने का वेतन भी दिया करता था[56]। सलिकेदार जातक में भी ऐसा उल्लेख आया है कि सालिण्ड्य निवासी कोसियगोत्त ने अपने खेत में काम करने वाले पांच सौ कृषि मजदूरों को

लगा रखा था[57]। इसके अलावा बौद्ध साहित्य मे चर्चित अनाथपिण्डक, गहपति पराशर आदि भी ऐसे ही भू–स्वामी थे जिनके पास काफी कृषि–मजदूर रहा करते थे और खेती–कर्म से ही अपनी जीविका चलाते थे। पतजलि ने मजदूरों का जिक्र किया है जो खेती कार्य मे लगे थे[58]।

एकान्त तुष्णीमासीन उच्चते पंचर्भिहले·।

कृजतीति तंत्र भवितव्यं पंचर्भिहलैः कर्षयतीति।।

बौद्ध साक्ष्यो से पता चलता है कि दास भी कृषि कार्य में लगाये जाते थे। सामान्यतया दास दो वर्गों में विभक्त थे प्रथम वर्ग कृषि दासों का था और द्वितीय घरेलू दास[59]। बौद्ध जातको से यह स्पष्ट है कि समकालीन जगत मे बडी–बडी भू–सम्पत्ति वाले भी ऐसे किसान मौजूद थे जिनके पास सैकडो एकड जमीन थी[60]। ऐसे धनी किसान अपने खेतों मे दासों को कृषि कर्म करने के लिए रखे थे[61]। थेरिगाथा मे दास–गाम्य शब्द का उल्लेख हुआ है जिससे यह भावना परिलक्षित होती है कि लोग यहां से दासों को कृषि कर्म हेतु ले जाते रहे होंगे[62]। विशाखा की शादी में दहेज के रूप में कृषि के उपकरण हलों से भरी हुई पांच सौ गाडियों के साथ सैकडों दास भी थे। निश्चित रूप से कृषि कार्य सम्पन्न करने वाले ही ये रहे होंगे[63]। यह उल्लेख अपने आप में काफी रोचक लगता है और इससे ऐसा आभास होता है कि इतने ढेर सारे उपकरणों का प्रयोग मजदूरों द्वारा ही किया जाता रहा होगा। ऐसा भी लगता है कि कृषि मजदूरों के पास अपने कोई उपकरण नहीं रहते थे। और किसान मालिकों या भू–स्वामियों के द्वारा दिये गये उपकरणों से ही उनकी जमीन मे खेती का कार्य सम्पन्न करते रहे होंगे। बडे किसानों के अलावा बहुधा साधारण किसान भी दासों को अपने यहां रखते थे[64]। श्रावस्ती के एक ब्राह्मण किसान का भी उल्लेख इसी रूप में किया जा सकता है[65]।

कौटिल्य ने भी दासो को इसी रूप मे उल्लिखित करने का प्रयास किया है जिन्हे राजकीय भूमि मे सीताध्यक्षो के द्वारा रखा जाता था। कौटिल्य ने भी कृषि मजदूरी का जिक्र किया है। उसने लिखा है कि मजदूरो को अन्न के रूप मे वेतन दिया जाय, अगर उनका पहले से कोई वेतन नहीं निश्चित रहता था तो उन्हें उपज का दसवा हिस्सा दिया जावे[67]। यह भी लिखा है कि सीताध्यक्ष कृषि मजदूरों को एक पण या आधा पण उनके काम के बदले मे देवे। याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि जो भृत्ति ठहराये बिना भृत्यो से कार्य लेता है व्यापार पशुपालन या खेती कार्य, उससे राजा ततत कार्यों से होने वाले लाभ का दसवा भाग भृत्यों को दिलावे[68]। लेकिन जातको मे ऐसा उल्लेख मिलता है जिससे लगता है कि कार्य को देखते हुए ही श्रमिकों को वेतन दिया जाता था[69]। जातको से स्त्री और पुरुष दोनों द्वारा खेती मे काम किए जाने का विवरण मिलता है[70]।

राज्य की तरफ से कृषि मजदूरो की रक्षा करने के प्रमाण हैं। नारद ने युधिष्ठिर से कहा है कि क्या तुम्हारे राज्य मे मजदूरों की देखभाल अच्छी तरह से की जाती है या नहीं। राज्य की सम्पन्नता इन्ही के ऊपर निर्भर है[71]। राम ने भी भरत से कहा कि अगर श्रमिकों को समय से अन्न या मजदूरी नहीं मिलती तो यही उनकी आर्थिक दुर्दशा का कारण है[72]। इस प्रकार प्राप्त तमाम साक्ष्यों से इस बात की पुष्टि होती है कि कृषि मजदूरों की आर्थिक दशा बहुत अच्छी नहीं रही होगी यद्यपि कि समय-समय पर उनकी आर्थिक दशा सुधारने के प्रयास के भी प्रमाण हमे मिलते हैं[73]।

यह बताना बहुत कठिन है कि समाज में कितने लोगों की संख्या राजकीय प्रशासन के ऊपर निर्भर करती थी, क्योंकि विभिन्न कालों एवं विभिन्न राज्यों के प्रशासनिक ढांचे में एक सामान्य एकरूपता होते हुए भी हर एक संस्था की

आवश्यकता एक प्रकार की नहीं थी। इसीलिए निश्चित रूप से ही अलग–अलग कालो एव अलग–अलग राज्यो मे अलग–अलग प्रकार के पदाधिकारी एवं पदाधिकारियो की सूची रही होगी। मनु और कौटिल्य इस बात से एकमत है कि हरेक राज्य के आवश्यकतानुसार उसके मत्रियो की सख्या निश्चित की जाय[74]। बौद्ध साहित्य से भी ऐसा उल्लेख मिलता है कि राज्य का कार्यक्षेत्र व्यापक न होने पर साधारणतः पांच ही मंत्री होते थे[75]।

प्राचीन भारतीय, सामाजिक व्यवस्था में प्रशासन का कार्य क्षत्रियो का ही माना जाता था लेकिन कुछ प्राप्त साक्ष्यों से व्यवहार में दूसरी ही बातें सामने आती है। जातकों मे कम से कम चार ब्राह्मण राजाओं का उल्लेख मिलता है[76]। मौर्योत्तर काल मे हमें ब्राह्मणवर्णीय शुंग, आंध्र, कण्व, वाकाटकों का उल्लेख मिलता है जो कि राजवंश कहलाये। मनु के कथन से भी परोक्ष रूप से जानकारी मिल जाती है, जहां उनकी सलाह है कि स्नातक को (जिसने विद्याध्ययन पूरा कर लिया हो) शूद्र राजा के देश मे नही टिकना चाहिए, कि शूद्र भी राजा होते रहे होंगे[77]। विद्वानों ने ऐसे दृष्टान्तों को अपवाद ही माना लेकिन यह भी कहा कि सिंहासनारूढ होने पर ऐसा राजा न तो शूद्रवत व्यवहार ही करता था और न तो उसके ही साथ लोग वैसा व्यवहार करते थे[78]।

राज्य मे सेना का महत्वपूर्ण स्थान था। शस्त्र धारण करने का अधिकार सैद्धान्तिक रूप से केवल क्षत्रिय को ही था। मनु ने आपातकाल में ब्राह्मण और वैश्य को शस्त्र धारण करने की बात तो कही है लेकिन शूद्र को ऐसी परिस्थिति में भी इस अधिकार से वंचित रखा गया[79]। कौटिल्य ने ब्राह्मण सैनिकों के विषय मे अपनी असहमति प्रकट की और कहा किं ऐसी सेना को अनुनय विनय द्वारा जीता जा सकता है, लेकिन वैश्यों और शूद्रों की सेना गठित करने की बात कही। सारभंग जातक से

जानकारी मिलती है कि वाराणसी के राजा के ब्राह्मण पुरोहित के पुत्र जोतिपल को सेनापति नियुक्त किया गया था[81]। बौद्ध–जैनग्रंथों मे कुछ ब्राह्मण सेनापतियों का उल्लेख हुआ है[82]।

अमात्य क्षत्रिय वर्ण के अलावा अन्य वर्ण के लोग भी नियुक्त किए जाते रहे होगे। आपस्तम्ब का कथन है कि नागरिकों और ग्रामीणों की रक्षा के लिए प्रथम तीन वर्ण के लोग नियुक्त किए जाने चाहिए[83]। कौटिल्य ने भी अमात्योत्पत्ति अध्याय मे अमात्यों के लिए जो योग्यताए बतलायी है उनसे उनके उच्चवर्ण का ही पता चलता है। हापकिस ने भी महाभारत में उल्लिखित सैतीस सदस्यों की ऐसी अमात्य–परिषद की ओर ध्यान आकृष्ट किया है जिसके इक्कीस सदस्य वैश्य थे[85]। शान्तिपर्व में आठ मंत्रियो के निकाय का भी उल्लेख है जिसमें चार ब्राह्मण, तीन राजभक्त, अनुशासित एव आज्ञाकारी शूद्र एव एक ऐसे सूत, जिसकी अवस्था पचास साल के ऊपर हो, से भी प्रतिनिधित्व दिया है। डी. डी कौसाम्बी ने इसे माना कि मत्री के रूप में तीन शूद्रों की नियुक्ति को एक प्रयोग करने योग्य आदर्श ही माना जा सकता है जो शान्तिपर्व मे शूद्रो के प्रति अपनाये गये उदार दृष्टिकोण के सर्वथा अनुरूप है[87]। इसके अलावा भी तमाम ऐसे साक्ष्य सुलभ हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि क्षत्रिय के अलावा शेष वर्ण के लोग भी प्रशासनिक कार्यों से अपने को सम्बद्ध किए हुए थे। ब्राह्मण चाणक्य, जिसके दिशा निर्देशन में चन्द्रगुप्त ने मौर्य साम्राज्य की नींव डाली थी एवं सम्राट भी कहलाया, का उल्लेख सर्वविदित है[88]। शक नरेश रुद्रदामन का मंत्री वैश्य तुषास्क था। सातवाहन शासकों के अमात्य शिवगुप्त और परिगुप्त भी सम्भवतः वैश्य ही थे[89]। बौद्ध साहित्य महापरिनिब्बानसुत्त में जानकारी मिलती है कि अजातशत्रु नगर का निर्माण कराया और दस्तकार के ही चतुराई पूर्ण व्यवहार एवं विवेक से वंज्जियों की एकता को धक्का लगा, फलतः उन्हें आसानी से जीता जा सका[90]।

इन तमाम साक्ष्यो के अवलोकन से मेरी निजी राय यह है कि राजकार्य संचालन मे आजकल की ही लोकसभा, राज्य सभा, विधान सभा, विधान–परिषद एव अन्य राजनीतिक सस्थाओं के सदस्यों, मंत्रियों एव शासन चलाने वाले पदाधिकारियों की भाति उस समय भी प्रत्येक वर्ण एव जाति के कुछ योग्य सदस्यो को किसी न किसी अनुपात में प्रतिनिधित्व अवश्य दिया जाता रहा होगा और राजकीय विषयो पर निर्णय लेने हेतु क्षत्रिय वर्ण के अलावा समाज के अन्य वर्णों की सलाह एवं मंत्रणा को भी महत्व दिया जाता था।

दूत के लिए भी महाकाव्यो एवं स्मृतियों मे ऐसी ही मिलती–जुलती बातें कही गयी है[91]। बौद्ध एव जैन स्रोतों से भी ज्ञात होता है कि कभी कभी क्षत्रिय श्रेणी के ब्राह्मण दूत रूप मे नियुक्त किए जाते थे[92]। न्यायाधीश के लिए मनु और याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मण को ही प्राथमिकता दी थी और योग्य प्रत्याशी न मिलने की स्थिति में क्षत्रिय और वैश्य वर्ण से सम्बन्धित व्यक्ति को न्यायाधीश रखने की बात कही[93]।

मंत्री, आमात्य और सचिव इन तीनों शब्दों का प्रयोग इस काल के साक्ष्य मे सर्वोच्चस्तरीय राजकर्मचारियों के लिए हुआ है। इन तीनों में अन्तर क्या था, यह निर्णय करना बहुत ही मुश्किल कार्य है। अर्थशास्त्र से जानकारी मिलती है कि अमात्य विभागो के उच्चस्थ पदाधिकारी होते हुए भी मत्रियों से पद में नीचे थे, इसीलिए सख्या में भी अधिक थे। मंत्रियों और अमात्यों के वेतन से भी यही बात स्पष्ट होती है। जहां मत्रियों का सालाना वेतन 48,000 पण था वहीं अमात्यों का मात्र 12,000 पण ही था[94]। अमात्य पद के लिए योग्य पुरुष मंत्री–पद के लिए भी योग्य था, ऐसा नही माना जा सकता[95]।

प्राचीन काल मे शासन को सुचारू रूप से चलाने में मंत्रियों का महत्वपूर्ण स्थान था। राम ने भरत को उपदेश देते समय उसे तीन–चार मंत्रियों के साथ मंत्रणा

करने की सलाह दी है। डॉ0 अल्टेकर ने माना कि ये तीन–चार मंत्री मत्रिमण्डल के वयोवृद्ध, विशेषानुभवी, वरिष्ठ सभासद रहे होगे जिनके उपदेशो को राजा विशेष मान्यता देता था[96]। मनु ने मत्रियो की सख्या सात या आठ होना आवश्यक माना[97]। महाभारत इनकी सख्या आठ बतलाता है[98]। कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र मे राजा को चार मत्रियो के साथ मंत्रणा करने की बात कही है। इसके अलावा उन्होने अपने विभिन्न मतों का उल्लेख किया है जिससे पता चलता है कि वे मानव सम्प्रदाय वाले बारह, बार्हस्पत्य पंथ वाले सोलह और औशनत पंथ वाले बीस मंत्रियो के पक्ष में थे[99]। सख्या चाहे जितनी भी रहती रही हो, इतना तो निश्चित ही था कि प्रशासनिक निर्णयों मे मंत्रियो की भूमिका काफी महत्वपूर्ण समझी जाती थी। मंत्रियों के कार्यों की चर्चा करते हुए कौटिल्य ने लिखा है कि उनका कार्य नयी नीति–निर्धारण करना एवं उसे सफलतापूर्वक कार्यान्वित करना, इसमें आने वाली कठिनाइयों को दूर करना, राज्य के आय–व्यय के सम्बन्ध मे नीति निर्धारण और उनका निरीक्षण करना, राज कुमारों की शिक्षा–दीक्षा का समुचित प्रबन्ध करना, उनके राज्याभिषेक में भाग लेना, परराष्ट्र नीति का संचालन करके पडोसी स्वतंत्र राजाओं की ओर साम्राज्यान्तर्गत करद सामन्तों की नीति पर विचार करना, ही था[100]। बौद्ध साहित्य से भी इस बात की पुष्टि होती है कि युवराज को राज्याभिषेक एवं राज्याधिकार दिया जाय या नही, इस बात का निर्णय मंत्रीगण ही किया करते थे[101]। रामायण से जानकारी मिलती है कि मत्रिपरिषद के सदस्यों द्वारा संयुक्त रूप से एकमत होकर राजा को राय देनी पडती थी[102]। कौटिल्य ने भी लिखा है कि साधारणतः मंत्रिपरिषद की राय मानने के लिए राजा से अपेक्षा की जाती थी, वैसे निर्णय करने का अधिकार राजा को ही था[103]। कभी कभी राजा को मंत्रियों की राय मानने के लिए बाध्य हो जाना पडता था, ऐसा भी उल्लेख मिलता है। इस सन्दर्भ में दिव्यावदान की उस कहानी का स्मरण किया जा सकता है जिसमें अशोक को मंत्रियों के विशेषता के फलस्वरूप अपने

दानकार्यों मे कुछ कमी करनी पडी[104]। शक नरेश रुद्रदामन ने गिरिनार बाध जैसी बडी आर्थिक योजनाओ पर मत्रिपरिषद की राय ली थी[105]। अशोक के छठे शिलालेख मे भी मत्रियो की कार्य–प्रणाली एवं उनके कार्यों का जिक्र हुआ है[106]। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे मत्रियो के लिए आपेक्षित योग्यता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उन्हे उच्चकुल से सम्बन्धित, प्रतिष्ठित, कलाकुशल, दूरदर्शी, प्राज्ञ, मेधावी, निर्भीक, चतुर, तीव्रमति, उत्साही, मनस्वी, धीर आदि होना चाहिए[107]। अर्थशास्त्र का यह कथन अपने आप मे काफी महत्वपूर्ण लगता है क्योकि इससे ऐसा लगता है कि सामान्यजन के लोगो के लिए ऐसे पेशे खुले नहीं थे, क्योंकि ऐसे पेशो में उच्चकुल के ही सदस्यो को विशेष रूप से प्राथमिकता दी जाती रही होगी।

प्रशासन के क्षेत्र में अमात्यों की भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण मानी जाती थी जो राजा को शासन–सम्बन्धी विषयों में परामर्श देने का कार्य करते थे। जातको मे ऐसा उल्लेख मिलता है जिससे लगता है कि उन्हे सब विद्याओं व शिल्पों में निष्णात होना आवश्यक था[108]। ऐसी भी कथा मिलती है जब राजा की मृत्यु के बाद राज्य–सचालन का कार्य अमात्य ही स्वयं किया करते थे। सात दिन के पश्चात् जब और्ध्वदैहिक क्रियाये समाप्त हो जाती थी, तब वे ही इस बात का निर्णय करते थे कि राजगद्दी पर कौन विराजमान हो[109]। यद्यपि जातकों में अमात्यों का उल्लेख राजा के सलाहकार के रूप में हुआ है फिर भी सबसे विस्तृत जानकारी कौटिल्य के अर्थशास्त्र से होती है जहाँ उनका उल्लेख अधिकारियो के ऐसे संवर्ग के रूप में हुआ है जिनमें से अन्य सभी उच्च पदाधिकारी लिए जाते थे[110]। अमात्य ऐतिहासिक काल में राज्य व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग थे और इन्हें वही स्थान प्राप्त था जो अशोक के शासन काल में महामात्रो को। जहा तक इनके कार्यों का प्रश्न है, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह स्पष्ट हो कि ये सलाहकार या मंत्री के ही रूप में कार्य करते थे। कम से कम ये संगठित निकाय के रूप में कार्य करते हुए नहीं प्रतीत होते लेकिन

सम्भवत ये प्रान्तीय शासको, कोषागारिकों, भूमिदान निष्पादकों आदि की हैसियत से ही कार्य करते थे, ऐसा कुछ विद्वानो का मत है[111]।

साहित्यिक साक्ष्यों के अलावा अभिलेखिक साक्ष्यों से भी हमें कुछ अमात्यो के उल्लेख मिलते हैं। सातवाहन काल में गोबर्द्धन आहार मे विष्णुपालितशिवदत्त और श्यामक नामक अमात्य मे कार्य किया[112]। द्वितीय शताब्दी ई0 में शासन करने वाले बसिष्ठी पुत्र पुलमावी के भी राज्यकाल मे शिवस्कांदेल नामक अमात्य का उल्लेख मिलता है। गौतमी पुत्र शातकर्णि के अमात्य परिगुप्त[113], सतरेक[114] के अलावा बशिष्ठी पुत्र शातकर्णि के अमात्य सर्वाक्षदलन और विष्णुपालि का भी उल्लेख यहां आवश्यक लगता है[115]।

प्रशासन एवं राजकार्यों के संचालन मे पुरोहित का भी स्थान प्रधान था जो राजा के धर्म और अर्थ दोनों क अनुशासक होता था। जातकों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि प्रथम राजा, जिसे महासम्मत कहा गया है, को भी पुरोहित नियुक्त करने की आवश्यकता हुई थी[116]। जातकों में ऐसे भी उल्लेख सुलभ है जिनसे यह बात स्पष्ट होती है कि राजा को पथभ्रष्ट होने की दशा में पुरोहित उसे सन्मार्ग पर लाने का प्रयास करता था, भले ही इसके लिए उसे राजा को डाटना ही क्यो न पडे[117]। राजा अपने पुरोहित की नियुक्ति स्वय करता था और यह भी न्यायसंगत लगता है कि पुरोहित के मरने के बाद उसके स्थान पर उसके पुत्र को ही उस पद पर आसीन किया जाता था। राजा दिशामति के पुरोहित गोविन्द की मृत्यु के बाद उसी के पुत्र जोतिपल को उसके स्थान पर पुरोहित नियुक्त किया गया था[118]। यद्यपि पुरोहित का पद आनुवंशिक नही था लेकिन कुछ साहित्यिक साक्ष्य इसी बात को पुष्ट करते हैं और इन शब्दों जैसे पुरोहित कुल से आनुवंशिकता की ही भावना मिलती है[119]। उदाहरण के लिए यहां यह उल्लेख काफी महत्वशाली लगता है कि भारवि

प्रसेनजित के ही पुरोहित कुल मे जन्म लिया था और बचपन से ही वह प्रसेनजित का आचार्य (पुरोहित) था[120]। तिलमुष्ठि जातक के अनुसार वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त ने तक्षशिला के अपने आचार्य को पुरोहित के पद पर आसीन किया था और वह उसका उसी प्रकार अनुसरण करता था जैसे पुत्र अपने पिता का[121]। कौटिल्य ने भी ऐसा ही लिखा है कि पुरोहित का अनुसरण राजा वैसे ही करे जैसे शिष्य गुरू का, पुत्र पिता का या भृत्य स्वामी का[122]। महाकाव्यो से इस बात की जानकारी मिलती है कि राजा का योगक्षेम भी पुरोहित के ही अधीन माना जाता था[123]। जातकों में ऐसा कहा गया है कि वह राजसेना के हाथी और घोडो को मंत्रपूत करता था[124]। इसके साथ ही साथ पुरोहित शस्त्र और शास्त्र व विशेष रूप से नीतिशास्त्र में निष्णात होता था जब राजा किसी दीर्घकालीन यज्ञ की दीक्षा लेता था तब पुरोहित ही शासन करता था, ऐसा धर्मसूत्रों में कहा गया है[125]। राजकुमारों की अनुपस्थिति से राजसिहासन खाली रहने पर राजगुरु बशिष्ठ ही आवश्यक समय तक राज्य का संचालन किए, रामायण में यह उल्लिखित है[126]।

न्यायालय में भी पुरोहित को विशिष्ट स्थान प्राप्त था। यद्यपि राज्याधिकारियो के रूप मे इनकी गिनती नहीं होती थी लेकिन प्रभाव एवं महत्व के दृष्टिकोण से अन्य अधिकारियों की तुलना में इनका महत्व काफी था[127]। राजा के घर के पुजारी रूप मे पुरोहित राजा को आध्यात्मिक एवं लौकिक बातों की जानकारी कराता था और वह इस रूप में आचार्य की भांति कार्य करता था[128]। राजकोष की रक्षा करना भी उसका कर्तव्य माना जाता था, ऐसा बौद्ध साहित्यों से स्पष्ट है[129]। कहीं कहीं हम उसे राज्याधिकारी के रूप मे भी पाते हैं[130]। और अन्यत्र न्यायिक कर्तव्य में उसका कार्य सेनापति रूप में भी दृष्टिगोचर होता है[131]। पुरोहित के लिए योग्यता का उल्लेख करते हुए कौटिल्य ने लिखा है कि उन्नतकुल में उत्पन्न, शील तथा सदाचार सम्पन्न, सभी वेदों तथा व्याकरण आदि वेदांगों में पारंगत, देवी विपत्तियों एवं

शकुनशास्त्र के विश, दण्ड–नीतिशास्त्रो में निपुण तथा दैवी–मानवी आपदाओं को अथर्ववेदोक्त मत्रों द्वारा हटा देने मे कुशल व्यक्ति को ही राजा पुरोहित नियुक्त करे[132]।

अर्थशास्त्र में समाहर्ता का उल्लेख हुआ है[133]। समाहर्ता का कार्य था सम्पूर्ण राज्य को चार जनपदों मे बांटना तथा ग्रामों को तीन श्रेणियों में व्यवस्थित करना। साम्राज्य की समस्त राजस्व की देखरेख भी इसी के अधीन सम्भव मानी जाती थी। दुर्ग, राष्ट्र, खनि, सेतु, वन, व्रज, वणिक पथो पर ध्यानदेना काफी महत्वपूर्ण काम था क्योकि यही कर के मुख्य स्रोत थे। व्यय पर भी समाहर्ता का ही नियत्रण था जिसकी मुख्य मदे देवपितृपूजा और दान, अन्तःपुर और महानल, दुत, कोष्ठागार, आयुधागार, , कारखाने और विष्टि, पैदल, अश्व, रथ, गज सेना, गोमल थी[134]। डा0 अल्टेकर ने माना कि समाहर्ता के अधीन विविध विभागों के प्रधान अधिकारी काम करते थे जिन्हें मौर्यकाल मे अध्यक्ष और शक शासन मे कर्म सचिव कहते थे[135]। याज्ञवल्क्य ने इन अध्यक्षो के लिए कुछ योग्यताओं का भी उल्लेख किया है[136]।

कौटिल्य ने सन्निधाता नामक पदाधिकारी का भी उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि सन्निधाता को सैकडों वर्ष की बाहरी तथा अन्दरूनी आय–व्यय का परिज्ञान होना चाहिए जिससे वह बिना किसी संकोच के तुरंत व्यय शेष को बता सके। वही यह भी निर्णय करता था कि कोषागार और कोष्ठागार कहां और किस परिमाण के बनेंगे[137]।

महावग्ग में सेनापति का भी उल्लेख हुआ है जो सेनानायक महाभात्य के नाम से जाने जाते थें। जातकों में भी इसका उल्लेख आया है[138]। अर्थशास्त्र में भी कौटिल्य ने इसका उल्लेख किया है। इसकी योग्यता का विवरण देते हुए कौटिल्य ने लिखा कि सेनापति सम्पूर्ण युद्ध विद्या तथा अस्त्र–शस्त्रविद्या में पारगत हो और

हाथी–घोड़ा एव रथ सचालन में समर्थ हो चतुरग सेना के कार्य तथा स्थान का निरीक्षण भी इसी के कार्य क्षेत्र मे बतलाया गया है। सेनापति का पद काफी महत्वपूर्ण माना जाता था। अभिलेखो मे कही कही उसे राज्यपाल के भी रूप मे कार्य करते हुए देखा गया है[140]।

प्रशास्ता का भी पद काफी महत्वपूर्ण माना जाता था जिसके अधीन राजकीय कर्मचारियों का वेतन, नौकरी की शर्तें, विविध पेशों, जनपदों, श्रेणियों, ग्रामो आदि के धर्म, व्यवहार तथा चरित्र का उल्लेख, खानों, कारखानो आदि के कार्य का पूरा–पूरा हिसाब आदि का सही–सही विवरण एव जानकारी रखना आदि कार्य, सचालित होता था[141]। ऐसा माना जा सकता है कि लेखक या प्रशास्ता का पद अमात्य के बराबर होना चाहिए जिसका वेतन केवल मंत्री से ही नीचा था। याजदानी ने लिखा है कि सातवाहन काल में राज्य के सचिव का कार्य लेखक ही किया करता था और उन सभी दस्तावेजों के मसौदे तैयार करता था जो कि राजा की ओर से जारी होते थे[142]। कौटिल्य ने लिखा है कि जो मंत्रियों के सभी गुणों से सम्पन्न हो, सभी लोक–व्यवहारों से परिचित हो, रचना में दक्ष हो, जिसका हस्तक्षेप स्पष्ट हो और तेज पढने वाला हो उसे ही लेखक नियुक्त किया जावे[143]। कुषाण कालीन सकलित पुरालेख मे लेखक मूलगिरि नामक अधिकारी का उल्लेख हुआ है[144]। सातवाहन कालीन अभिलेखो में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है[145]। डी0 एन0 झा ने माना कि सम्भवतः यह अधिकारी आधुनिक लेखाकार की तरह ही रहा होगा जो सम्भवत· राजस्व–प्रशासन की एक मूल विशेषता ग्राम पंजियों के रख रखाव से सम्बन्धित था[146]। डा0 अल्टेकर ने माना कि लेखक ग्राम का लेखाकार था[147]। कुछ विद्वानों ने अर्थशास्त्र में वर्णित गोप के साथ ही इसे समीकृत करने का प्रयास किया है और इसे गोप का ही प्रतिरूप माना[148]। जिलों में कर संचय तथा सामान्य प्रशासन का कार्य स्थानिकों और गोपों के द्वारा ही सम्पन्न हुआ करता था[149]। गोप की

अधीनता में पांच से दस तक गांव होते थे। गोप जनसंख्या का ब्योरा रखता था और देखता था कि वर्णों मे तथा ग्रामो में कौन कर दाता है और कौन कर मुक्त। उसे कृषकों, ग्वालो, व्यापारियो, शिल्पकारो, मजदूरो, दासो, द्विपद, चतुष्पद पशुओ, धन, बेगार, चुगी तथा अर्थदड से प्राप्त धन, स्त्रियो, पुरुषो, बूढों एवं जवानों की संख्या, उनकी विविध वृत्तियों, रुढियो, व्यय आदि के ब्योरे की बही रखनी पडती थी। स्थानिको का भी करीब–करीब यही कार्य था याज्ञवल्क्य का स्थान पाल और कौटिल्य का स्थानिक दोनो एक ही है[150]।

बौद्ध ग्रंथो के ग्राम भोजक, स्मृतियों के ग्रामणी और कौटिल्य अर्थशास्त्र के ग्रामिक एक ही अधिकारी रहे होंगे[151]। मथुरा से प्राप्त कुषाण लेख के अलावा सातवाहन लेखो मे भी ग्रामणी का उल्लेख हुआ है[152]। मिलिन्दपन्हो से भी इसकी जानकारी होती है जहां राजा की ओर से सम्पूर्ण गाव के गृहस्थों को दूत के द्वारा अपने घर के सामने कर उद्‌गृहीत करने के उद्‌देश्य से बुलाया (मिलिन्द 147) ग्रामणी के पद की महत्ता इससे भी सावित होती है कि इसे न्याय सम्बन्धी अधिकार के साथ–साथ शराब की दुकानों के लिए लाइसेस देने का भी काम सौंपा गया था।

कुछ विद्वानों ने माना कि बौद्ध साहित्यों का ग्राम भोजक ग्राम राजस्व वसूलने वाला अधिकारी ही था। जातक साहित्यों मे तुडिय, अकासिय, निग्गाहक, बलिसाधक, राजकम्भिक तथा रज्जुगाहक का भी उल्लेख कर लगाने व कर वसूलने के ही रूप मे हुआ है। डी एन झा ने माना कि चूँकि जातकों में राजस्व समाहरण अधिकाशत इन्ही पदाधिकारियों द्वारा किया जाता प्रतीत होता है इसलिए यह सम्भव है कि ग्रामभोजक स्वयं समाहार्ता नहीं रहा होगा और अगर वह कर वसूलने का कार्य करता भी होगा तो उसका कार्य निरीक्षणात्मक ही रहा होगा। कुछ भी हो मनुस्मृति और मिलिन्दपन्हो के आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि राजकीय राजस्व

वसूली इसी के कर्तव्य मे थी[154]। महाकाव्यो में भी ऐसा विवरण मिलता है कि ग्राम के शासक को ग्रामिक, दस ग्रामो के शासक को दशिक, बीस ग्रामों के शासक को विशाधिप, सौ ग्रामों के शासक को शतपाल और हजार ग्रामों के शासक को सहस्रपति की उपाधि दी गयी थी[155]। जनपद का राष्ट्र के अन्तर्गत आने वाले नगरो के शासन के लिए सर्वाधिचिन्तक नामक शासक की नियुक्ति करनी पडती थी[156]।

अर्थशास्त्र मे नागरक का उल्लेख आया है[157] जो नगरो के शासन का सर्वोच्च अधिकारी हुआ करता था। अशोक के धौली शिलालेख में भी नागरक का उल्लेख हुआ है जहां अशोक ने उन्हें आदेश दिया है कि वे नगर जन का अकारण बन्धन या अकारण दण्ड न हो, इसकी देखभाल करें[158]।

जातक साहित्य में रज्जु का उल्लेख हुआ है[159]। कुरुधम्म जातक में भी एक रज्जुगहकमाच्य (रस्सी पकडे वाला अमात्य) को एक जनपद की भूमि नापते दिखाया गया है[160]। अशोक ने रज्जुको को काफी अधिकार दिया था। साम्राज्य की साधारण नीति के अनुसार उन्हे दीवानी, फौजदारी और माल आदि विषयों में पूरे अधिकार प्राप्त थे। न्यायदान के दृष्टिकोण से सम्भवत ये अपने–अपने प्रदेश में सर्वोच्च न्यायाधिकारी होते है ऐसा डा0 अल्टेकर ने माना है[161]। बूलर का कहना है कि रज्जुगहक अमच्च या जातकों का रज्जुक और अशोकीय राजाज्ञाओं का राजुक सब एक ही है[162]। अल्टेकर ने माना कि राजुक ही माल विभाग के अध्यक्ष भी हुआ करते रहे होगे[163]। अशोक ने स्तंभलेख पांच में कहा है कि मेरे रज्जुक नामक पदाधिकारी लाखो मनुष्यो के ऊपर नियुक्त हैं, उन्हें मैने पूर्णतया स्वतंत्र कर दिया है जिससे कि वे बिना किसी बाधा के अपने कार्य कर सकें[164]।

बौद्ध साहित्य में नगर गुत्तिक शब्द का उल्लेख हुआ है जो कि शहर के कोतवाल हुआ करते थे । यह नगर में शान्ति रक्षा का उत्तरदायी भी होता था[165]।

न्याय विभाग से सम्बन्धित अधिकारियो को बौद्धसाहित्य मे विनिश्चय महामात्त, वौहारिक महामात्त, सूत्रधर, अट्ठकुलक के अलावा पवेणिपोत्थक नाम दिया गया है। इतने राजकर्मचारियो के सम्मुख अपराधी साबित होने के बाद ही किसी अभियुक्त को दण्ड मिल सकता था[166]।

कौटिल्य ने राज्यकर्मचारियो एवं प्रशासन से सम्बन्धित नौकरों के वेतन का भी जिक किया है। यह कराने वाले ऋत्विक, आचार्य (गुरु) मत्रियो, पुरोहितो एव सेनापतियो को 48,000 पण सालाना वेतन मिलता था। दौवारिक, अन्तर्वशिक, प्रशास्ता, समाहार्ता, एव सन्निधाता को 24,000 पण, राजकुमार (युवराज को छोडकर), राजकुमारो की द्वाई, नायक, न्याय के अध्यक्ष पौर व्यावहारिक, कर्मान्तिक, मत्रिपरिषद के सदस्यो, राष्ट्रपाल, अन्तपालको 12,000 पण, श्रेणियों के प्रधानो, हस्ति–अश्व–रथ सेना के प्रमुखों और प्रदेष्टाओ को 8000 पण, पैदल, रथ, हस्तिया, वनस्पति, हस्तिवनो के अध्यक्षों को 4,000 पण, रथ हांकने वालो को 2000 पण, भविष्यवक्ता, ज्योतिषी, पुराण पाठक, सूत, मागध, पुरोहित के सहायकों एवं अध्यक्षों को 1,000 पण, प्रशिक्षित पदातियों, गणको एवं लिपिकों को 500 पण, संगीतज्ञों को 250 पण, दुन्दुभिवादको के 500 पण, कारुओं एवं शिल्पकारों को 120 पण, छोटे–मोटे भृत्यों, राजा के पार्श्वभृत्यों, रक्षक एवं बेगार लगानेवालों को 60 पण, कार्ययुक्तों, पीलवान, बच्चों (माणवक वस्त्र परिधान संभालने वाले सड़को,) पर्वत खोदने वालों, सभी नौकरों, शिक्षकों एवं विद्वान लोगों को पूजा वेतन (आनरेरियम्) मिलता था जो उनके गुणो के अनुसार 500 से 1000 पण तक मिलता था। राजा के रथकार को 1000 पण, पाच प्रकार के गुप्तचरों को 1000 पण, ग्राम के नौकरों (यथा धोबी) मंत्रियों, विष देने वाले, अवधूतिनियों को 500 पण, घुमक्कड़ गुप्तचरों को 300 पण या अधिक भी उनके परिश्रम के अनुसार दिया जाता था[167]। कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि विभिन्न विभागों के अध्यक्षों, गायकों, गोपों, स्थानिकों, सेना के अधिकारियों, वैद्य,

अश्व–प्रशिक्षको को भूमि भी दी जाती थी किन्तु शर्त यह थी कि वे उसे न तो बेच सकते हैं न तो बन्ध ही रख सकते है[168]। कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि कार्य करते हुए मर जाने पर कर्मचारियों के पुत्रो एवं स्त्रियों के लिए जीविका एव पारिश्रमिक की व्यवस्था भी की जाय एव मरने वाले अधिकारियों के छोटे बच्चों एव रोगी–सम्बन्धियो को कृपया धन की भी व्यवस्था की जाय। अन्त्येष्ठि–क्रिया, रोग, सन्तानोत्पत्ति के समय धन एव आदर भी उन्हे मिलना चाहिए।

एक, दस या इससे अधिक ग्राम वाले राजकर्मचारियो के वेतन के विषय मे मनु[169] का कहना है कि ग्राम के मुखिया को वही वस्तुएं मिलनी चाहिए जो प्रतिदिन राजा को मिलती है, यथा भोजन, पेय पदार्थ, ईधन आदि दस ग्रामों के अधिकारी को एक कुल, बीस ग्रामों से अधिक वाले को पांच कुल, एक सौ ग्राम के अधिकारी को एक ग्राम का भूमिकर तथा एक सदस्य गानों के बडे बडे अधिकारी को एक नगर का कर मिलना चाहिए।

प्रशासन से जुडे बडे अधिकारियो के अलावा छोटे एवं मध्यमवर्गीय पदाधिकारियों की भी जानकारी हमें साहित्यिक साक्ष्यों से मिल जाती है। जो शासन के दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण समझे जाते थे। कौटिल्य ने अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र मे विभिन्न विभागों से सम्बन्धित इन अधिकारियों के बारे में काफी जिक्र किया है। प्रदेष्टा[170] नामक जो कि सेना का युद्ध क्षेत्र में संचालन करता था, व्यावहारिक[172], कार्मान्तिक[173], खानों, जंगलों खेतों आदि से एकत्र कच्चे माल को विविध प्रकार के तैयार माल के रूप में परिवर्तित करने के लिए राजकीय कारखानों को संचालित करने का दायित्व इसी के ऊपर था (2.12) अन्तपाल[174], दुर्गपाल[175], दौवारिक अन्तर्वशिक[176] आटविक[177] हिरण्यक दोणमापक[178] आदि भी मुख्य राजकर्मचारी थे, जिनका उल्लेख विभिन्न ग्रथों में हुआ है।

राज्य या राज्य सेवा से जीविका निर्वाह करने वाले लोगो की संख्या कृषि, उद्योग, व्यापार इत्यादि से जीविका चलाने वाले लोगो से अवश्य ही कम रही होगी, पर इनकी सख्या नगण्य भी नही रही होगी। यद्यपि ऐसे लोगों की संख्या और सामान्य जनता के साथ इनके अनुपात अलग अलग राज्य एवं अलग–अलग काल मे अलग–अलग रहे होगे, फिर भी प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि राजकीय प्रशासन का दावा बहुत हद तक विभिन्न कालो और राज्यो मे सामान्य रूप से एक प्रकार का ही हुआ करता था, सिर्फ ढांचा का सापेक्षिक आयतन, छोटा या बडा, राज्य के आयतन से निर्धारित हुआ करता था।

व्यापार और उद्योग का पारस्परिक आर्थिक सम्पर्क बहुत ही घनिष्ठ है। व्यापार का विस्तार उद्योग के भी विस्तार को सूचित करता है। प्रस्तुत काल में व्यापार की उन्नति के साथ–साथ उद्योगों के विकास के भी प्रमाण परिलक्षित होते हैं। वौद्ध साहित्यो, व्याकरण ग्रथों, महाकाव्यों, स्मृतियों, अर्थशास्त्र से इस विषय में काफी सामग्री मिलती है। जैनग्रंथपन्नवणा[179] में अट्ठारह, दीर्घ निकाय में चौबीस[180] महावस्तु में छत्तीस[181] के अलावा अंगविज्जा, रामायण से उद्योगों के बारे में ढेर सारी बातें मिलती है।

ऐसा लगता है कि सामान्य रूप से औद्योगिक ढॉचा कुटीर उद्योग के ऊपर निर्भर था जिसमें कारीगर स्वयं अपने छोटे–छोटे उद्योगों के मालिक हुआ करते थे। पर साथ ही साथ कुछ बडे पूंजीपति लोगों के संरक्षण में भी बडे पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन के साक्ष्य मौजूद है[183]। व्यापारिक और औद्योगिक श्रेणी, संघ सभूय–समुत्थान इत्यादि समवायिक औद्योगिक संस्थानों की उत्पति के भी प्रमाण सुस्पष्ट है[184]।

कुछ मुख्य उद्योगों का सक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है–

कपास और सूत के वस्त्र निर्माण की परम्परा भारत में काफी प्राचीन रही है। कुछ विशिष्ठ पुरातत्व वेत्ताओं का कहना है कि हडप्पा सभ्यता के लोगो को भी सूती कपडा बनाने की जानकारी थी[185]। अर्थशास्त्र से भी वस्त्र उद्योग के बारे मे काफी विवरण मिलते हैं[186]। कौटिल्य ने लिखा है कि सूत कातने के लिए उर्ण, वल्क, कार्पास, तूला, सन, क्षेम का प्रयोग होता था महाभारत से भी हमें कार्पास, चीनांकुश, चीनपट्ट, पत्रोर्ण, पट्ट, क्षौम, दुकूल, सन, उर्ण के उल्लेख मिलते हैं[187]। अगविज्जा मे भी हमे इस प्रकार के उल्लेख मिलते है[188]। सूत कातने वाले सूत्रकार नाम से जाने जाते थे जो बुनकरों से अलग ही थे[189]। वस्त्र उद्योग के मथुरा, अपरान्त, कलिग, काशी, वंग तथा माहिष्मती आदि का भी प्रसिद्ध केन्द्र थे[190]। भारतीय सूती वस्त्र उद्योग की प्रसिद्धि विदेशो तक थी। हेरोडोटस के अनुसार भारतीय सूती कपडो की बनावट और सुन्दरता ऊनी वस्त्रो से भी अच्छी थी[191]। प्लिनी ने भी भारतीय सूती कपडे की तुलना अंगूरी लता से की है[192]। एरियन ने भी भारतीय सूती कपडा की चमक एवं सफेदी की प्रशंसा की है[193]। सिकन्दर को मालवों ने जो उपहार दिया उनमें सूती वस्त्रों की बहुलता थी।

भारतीय ऊनी वस्त्रों की भी ख्याति जगत्प्रसिद्ध थी। गान्धार के ऊनी वस्त्रों के बारे में जानकारी हमें जातकों से मिलती है[194]। कौटिल्य तो गान्धार के विषय में मौन है किंतु नेपाल के ऊनी वस्त्र भिंगसी का उल्लेख करते है[195]। उनके अनुसार ये आठ टुकडो को जोडकर बनते थे और इन पर वर्षा का कोई असर नही होता था। कौटिल्य ने भेडों के रंग के आधार पर ऊनी वस्त्रो के तीन प्रकारों, निर्माण विधि के आधार पर चार प्रकारों, प्रयोग के आधार पर दस प्रकारों और गुण के आधार पर छः प्रकारो का उल्लेख किया है। ऊनी कम्बलों के भी उल्लेख हमें अर्थशास्त्र में मिलते

है। कम्बल तीन प्रकार के होते थे– शुद्ध (ऊन के असली रंग के), शुद्ध रक्त (हल्के लाल रग के), पट्टारक्त (लाल कमल के रंग के)। इन्हें चार प्रकार से बनाया जाता था खचित, वानचित्र, खण्डसंघात्य और तन्तुविच्छिन्न (अर्थशास्त्र 2.11) कौटिल्य ने विभिन्न प्रकार के ऊनी कपडो का भी उल्लेख किया है यथा–कौचपक (ग्वालों द्वारा ओढा जाने वाला मोटा कम्बल), कुलभित्तिका (सिर पर ओढ़ा जाने वाला शाल), सौमित्तिका (बैलो के ऊपर ओढाया जाने वाला कम्बल), तुरगास्तरण (घोडो की झूल), वर्णक, तलिच्छक (विस्तर पर विछाया जाने वाला आवरण), वारवाण (जिससे पहनने के लिए कोट आदि बनाया जाय), परिस्तोम (ओढा जाने वाला कम्बल) और समन्तमद्रक (हाथी परडाली जानेवाली झूल)[196] महाभारत के सभापर्व में अर्जुन को उपहार के रूप में मिलने वाले सामानों की सूची में ऊनी वस्त्रों की बहुलता थी[197]। मनु ने भी ऊनी वस्त्रों का उल्लेख किया है[198]।

रेशमी कपडों के निर्माण का भी काम प्रगति पर था। सुवर्णकुड्य के रेशमी कपडों के अलावा काशी और चीन भूमि के रेशमी कपडों को भी काफी महत्वशाली माना जाता था[199]। पुंड्र मे भी रेशमी वस्त्र तैयार किए जाते थे[200]।

मौर्य शासकों ने वस्त्र निर्माण एवं सूत तैयार करने के कार्य पर नियत्रण करने के लिए सरकार की तरफ से सूत्राध्यक्ष नामक अमात्य की नियुक्ति की थी[201]। जो कुशल कारीगरों द्वारा सूत, कवच और रस्सी बनवाता था। ऊन, वत्कल, कपास–सेमर की रूई, सन और क्षोम के सूत विधवा–अगहीन अनाथ कन्याएं–सन्यासिनिया, अपराधिनिया, वेश्याओं की वृद्ध माताएं, राजदासियां और देवदासियां कातती थी। अगविज्जा के अनुसार वस्त्र विक्रेता समाज के धनिक (सारवान) व्यापारियो के रूप मे माने गये[202]।

बौद्ध ग्रथो के अनुशीलन से विकसित काष्ठ उद्योग की जानकारी मिलती है। जातको से पता चलता है कि वर्धकी लोगो द्वारा पोतों, गाडियों, रथों के अलावा लकडी के मकानों का निर्माण किया जाता था[203]। पाच सौ वड्ढ़ियो के द्वारा बडे बडे वल्ले और पटरे तैयार करने के लिए नदी को पारकर जगल मे प्रवेश करने का भी वर्णन मिलता है[204]। महाउमग्गजातक से पता चलता है कि तीन सौ वर्धकी गंगा के ऊपरी इलाके के जगलो मे उपयोगी लकडियो को पसन्द करने के लिए भेजे गये थे ताकि तीन सौ पोतों के साथ–साथ शहर बसाने के लिए अच्छे सामान लाया जा सके[205]। मिलिन्दपन्हो से यह जानकारी मिलती है कि लकड़ी को काटने के लिए वर्धकी लोग पहले उस पर चिन्ह खींचते थे और बाद में उसी के अनुसार काटते थे। काटते समय मुलायम हिस्सों को निकाल दिया जाता था एवं कड़े हिस्सो को रख लिया जाता था[206]। कौटिल्य ने ऐसे वृक्षो का उल्लेख किया है जो इस उद्योग के दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण थे और जिनका उपयोग बहुधा इमारतों के निर्माण मे किया जाता था[207]। मेगस्थनीज ने भी भारतीय काष्ठ उद्योग का जिक्र किया है[208]। पतंजलि ने वर्धकी को एक महत्वपूर्ण शिल्पी माना जो प्रत्येक गांव में निवास करते थे पाणिनी ने लिखा है कि कुछ वर्धकी ऐसे थे जो कि दूसरो के घर जाकर काम किया करते थे जबकि कुछ अपनी कार्यशाला मे ही रहकर स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे[209]। समुद्दवणिक जातक से जानकारी मिलती है कि कुछ वर्धकी सामानों को तैयार करने के लिए सम्बन्धित लोगों से पहले ही पैसा ले लिया करते थे[210]।

भारतीय काष्ठ उद्योग की प्रशंसा में स्ट्रेबो ने काष्ठनिर्मित पाटलिपुत्र के राजप्रासाद का उल्लेख किया है। पाटलिपुत्र के पास हुई खुदाई में मिले लकड़ी के मंचों के रूप में प्राप्त साक्ष्य भी इस विषय पर काफी प्रकाश डालते हैं[211]। काष्ठ उद्योग के महत्व का प्रमाण इससे भी हो जाता है कि अर्थशास्त्र में जंगलो की देख रेख के लिए कुप्याध्यक्ष की नियुक्ति का उल्लेख मिलता है[212]।

आर्थिक व्यवस्था मे धातु उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान था। धातु उद्योग के बारे मे हमे साहित्यिक एव पुरातात्विक दोनों साक्ष्यों से काफी सामग्री मिलती है। वैदिक साहित्य मे हिरण्य, सुवर्ण्य, निष्क, अयस् आदि शब्दों का उल्लेख हुआ है[213]। उत्तर वैदिक काल मे मनुष्य स्वर्ण और कास्य के साथ–साथ रजत श्याम, लौह (चादी) सीसा और टिन का प्रयोग करने लगा था[214]। मिलिन्दपन्हों से हमें सोने, चांदी, टिन, लोहा आदि की जानकारी मिलती है[215]। अर्थशास्त्र से भी हमे धातु उद्योग के बारे में ढेर सारी सामग्री मिलती है[216]। अर्थशास्त्र मे प्राप्त साक्ष्यों के अनुशीलन से हमे इस उद्योग के ऊपर राज्य का काफी नियत्रण था ऐसा लगता है। कौटिल्य ने खन्याध्यक्ष, लौहाध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष, लवणाध्यक्ष नामक राजकीय कर्मचारियों का उल्लेख किया है जो कि इसी उद्योग से सम्बन्धित थे कौटिल्य ने आकराध्यक्ष नामक अमात्य को निर्देश दिया है कि उसके अधीन कार्य करने वाले कर्मचारी मैदानों और पहाडों मे स्थित खानों का पता लगायें। आकराध्यक्ष के अधीन कार्य करने वाला कर्मचारी लोहाध्यक्ष काफी महत्वपूर्ण समझा जाता था जो ताम्र, श्रपु, सीसा, वैकृन्तक आदि धातुओं के कारखानों का संचालन करता था[217]। खन्याध्यक्ष नामक कर्मचारी सामुद्रिक आकारों से शंख, वज्र, मणि, मुक्ता, प्रवाल आदि निकलवाने की व्यवस्था करता था। खनिज पदार्थों में नमक की भी गिनती होती थी जिस विभाग की देखभाल लवणाध्यक्ष के द्वारा की जाती थी। चांदी, सोने को शुद्ध करने तथा उससे विविध प्रकार के आभूषण बनाने का कार्य सुवर्णाध्यक्ष नामक अधिकारी के अधीन था। इस प्रकार लगता है कि धातु उद्योग के ऊपर राज्य का नियंत्रण था।

बहुसंख्यक देशी और विदेशी साक्ष्यों से भी धातु उद्योग की जानकारी मिलती है। पांचवी सदी ईसापूर्व में क्टेसियस नामक जिन उत्कृष्ट तलवारों का जिक्र किया गया है वे भारतीयों द्वारा परसियन राजा को उपहार स्वरूप दी गयी थीं[218]। इसके अलावा भारतीय नरेश पोरस ने सिकन्दर को भारतीय इस्पात की सौ टेलेण्ट्स उपहार

मे दिया था[219]। मार्शल महोदय को मीरटीले के उत्खनन के दौरान वसुला, चाकू, और खुरपी के साथ–साथ कृषि के ढेर सारे उपकरण मिले[220]। बोध गया मे हुए उत्खनन से तृतीय शताब्दी ईसापूर्व काल की लोहे की वस्तुए मिली[221]। तिन्नेवेली के कब्रिस्तान से भी चतुर्थ शताब्दी ईसापूर्व से सम्बन्धित लोहे के उपकरण मिले[222]। रामपुरवा (उत्तरी बिहार) मे पाये गये अशोक स्तंभ पर तांबे की चटखनी और उसी काल के ताबे के सिक्के विकसित धातु उद्योग के ही प्रमाण है[223]। तक्षशिला की खुदाई में मार्शल को चतुर्थ शताब्दी ईसापूर्व पहले के किसी भी प्रकार के ताबे और कासे धातु की वस्तुए नहीं मिली, इसी आधार पर उन्होंने माना कि इन दोनों का प्रयोग बाद में शुरू हुआ होगा[224]। लेकिन विद्वानो ने इसका विरोध किया और कहा कि कांसे के बारे में यह बात लागू हो सकती है, ताबे के विषय में नहीं। तक्षशिला की ही तरह स्थिति पूरे भारतवर्ष में नही रही होगी।[225] रजतमुद्राओं का प्रसार भी द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व मे अवश्य हो चुका था। पेरिप्लस ने लिखा है कि भारत वर्ष में रजत और टिन दोनों का आयात पश्चिमी देशों से होता था[226]। मार्शल ने माना कि विदेशो से राजनीतिक सम्बन्धों के ही माध्यम से भारत में रजत का प्रसार हुआ जो सीरिया, एशिया माइनर, साइप्रस आदि प्रदेशों से था। चरकसंहिता[227] और मनुस्मृति[228] में पीतल के प्रयोग की बात भी स्पष्ट हो जाती है। भारतीय धातु उद्योग की प्रशसा में हेरोडोटस ने लिखा है कि भारत से पारसीक साम्राज्य को तीन सौ टेलेण्टस सोना प्राप्त होता था[229]। स्ट्रैबो ने भी एक आनन्दमयी जुलूस का जिक्र किया है जिसमें सरकारी नौकर कीमती और सोने की जडी हुई बहुत सी वस्तुए लेकर चले थे।[230]

वैदिक साहित्य में चर्मउद्योग के बारे में भी जानकारी मिलती है जहाँ कि रथ हाकने के लिए रस्सियां, चाबुक, मोफना आदि का निर्माण किया जाता था[231]। भारत में जंगलों की बहुलता होने से तमाम जंगली पशुओं का निवास स्थल जंगल ही थे,

परिणाम स्वरूप जगली जानवरों के शिकार करने से कच्चे माल के रूप में चमडे की प्राप्ति हो जाया करती थी। मौर्य प्रशासन जगलो की रक्षा करने के लिए सचेष्ट था। जातक[232] से ज्ञात होता है कि चमडे से रस्सिया जूते, छाते आदि बनते थे। बडे बडे झोले भी चमडे के निर्मित हुआ करते थे[233]। पाणिनी[234] ने भी उल्लेख किया है कि दुबाली (रस्सी), सकट, जूता और चर्मकारों द्वारा ही निर्मित किया जाता था। चमडो के फदे, एक तल्ले के जूते और बडे बडे झोले बनाने का उल्लेख प्राथमिक बौद्ध साहित्य मे मिलता है[235]। छदन्तजातक से चमडे से निर्मित होने वाली विभिन्न प्रकार की दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुओं का उल्लेख मिलता है[236]। महावग्ग[237] से जानकारी मिलती है कि जूते प्राय· शेर, चीता या बिल्ली आदि की खालों से बनाये जाते थे। एरियन[238] ने भारतीय पोशाको का उल्लेख करते हुए चर्मकारो के कौशल का भी उल्लेख किया है। ये लोग चमडे के जूते के[239] अलावा जल ढ़ोने के लिए भी सामानो[240] का निर्माण किया करते थे कौटिल्य ने[241] अर्थशास्त्र में विविध प्रकार की खालो का उल्लेख किया है जो मुख्य रूप से इस उद्योग में काम आया करती थी। कान्तावर्ग (मोर के गर्दन के रंग की तरह इसका भी रंग होता था), प्रेयकर (नीले–पीले और श्वेत रंग के बिन्दु इसके ऊपर छुआ करते थे), उत्तरपर्वतक (पर्वतों से प्राप्त होने वाली विभिन्न प्रकार की खाले) विसी (इस खाल के ऊपर बडे बडे बाल होते हैं), महाविसी (श्वेत रंग की सख्त खाल होती है), श्यामिका (कपिल रंग की खाल) कालिका (कपिल और कपोत रंग की खाल होती थी), कदली, चन्द्रोत्तरा (चाद की तरह चमकने वाली खल), सामूली (गेहुँए रग की खाल), सातिना (काले रंग की), नलतूला और वृत्तपृच्छा (भूरे रंग की खाल) खालें मुख्य है। कौटिल्य ने ऐसे चर्मों को इस उद्योग के लिए आवश्यक एव श्रेष्ठ माना है जो रम, चिकना और प्रभृत बालों से युक्त हो। नियार्कस ने लिखा है कि भारतीय लोग श्वेत रंग के जूते पहनते हैं। ये जूते बढिया होते हैं जिनकी एडिया कुछ ऊंची होती थी या बनायी जाती थी और

इन्हे पहनने वाला कुछ ऊँचा प्रतीत होने लगता था[242]। विदेशियों द्वारा चर्म उद्योग की प्रशसा की जानी निश्चित रूप से इस उद्योग के विकसित होने का ही प्रमाण है।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे शराब उद्योग का भी उल्लेख किया है। इस उद्योग के ऊपर राज्य का नियत्रण था लेकिन कुछ परिस्थितियो मे अन्य लोग भी शराब का निर्माण किया करते थे। कौटिल्य ने लिखा है कि विशेष कृत्यो के अवसर पर कुटुम्बी लोग श्वेत सुरा का निर्माण स्वयं कर सकते हैं और औषधि के प्रयोजन से अरिष्टो का निर्माण स्वय कर सकते है। इसी प्रकार उत्सव यात्राओं के अवसर पर चार दिन के लिए सभी को सुरा निर्माण की स्वतंत्रता थी[243]। पतजलि[244] ने शराब बनाने का उल्लेख किया है जो कि इस उद्योग को काफी सहयोग प्रदान किया करते थे। अर्थशास्त्र मे उल्लेख है कि सुरा निर्माण में दक्ष व्यक्तियो को राजकीय सेवाओ मे रखा जाय। मौर्य शासको ने इस उद्योग के ऊपर राजकीय नियत्रण रखते हुए सुराध्यक्ष नामक आमात्य की नियुक्ति की जिसके अधीन यह उद्योग संचालित होता था। शराब की विक्री का प्रबन्ध नगरों, देहातों और कस्बों छावनियों में सर्वत्र किया जाता था[245]। कौटिल्य ने इस प्रकार की सुरा का उल्लेख किया है जो इस उद्योग के विकसित रूप को ही प्रमाणित करता है यथा मेदक, प्रसन्न, आसव, अरिष्ट, मैरेय, और मधु। लेकिन कौटिल्य ने साथ–साथ सुरा सेवन पर नियंत्रण का भी प्रावधान किया था। उसने लिखा है कि कर्मचारी और कर्मकर निर्दिष्ट कार्य में प्रमाद न करें, आर्य जन कहीं मर्यादा का अतिक्रमण न कर जाय और तीक्ष्ण प्रकृति के व्यक्तियो की उत्साह शक्तिया क्षीण न हों, अतः उन्हें केवल निर्धारित मात्रा में ही उन्हें शराब दी जाय[246] मेगस्थनीज[247] मे लिखा है कि भारतीय लोग यज्ञों के सिवाय कभी मदिरा नही पीते थे, उनका पेय जौ के स्थान पर चावल द्वारा निर्मित एक रस है। कौटिल्य ने सुरा के निर्माण में प्रयोग किए जाने वाली वस्तुओं एवं उनकी मात्रा का भी जिक्र किया है। एक द्रोंण जल, आधा आढक चावल और तीन प्रस्थ किण्व मिलाकर मेदक

सुरा तैयार की जाती थी। मेदक के निर्माण मे जल और चावल का अनुपात आठ और एक का होता था, खमीर उठान के लिए उसमे किण्व डाला जाता था। प्रसन्न सुरा को बनाने के लिए अन्न की पीठी के अतिरिक्त दालचीनी आदि मसाले भी पानी मे मिलाए जाते थे[248]।

मिट्‌टी के बर्तन बनाने का भी उद्योग काफी विकसित हो चुका था। वैदिक साहित्य मे कुलाल शब्द का उल्लेख हुआ है। जातकों से भी प्रमाणित होता है कि समाज मे मिट्‌टी के वर्तन बनाने वाले मौजूद थे[249]। बर्तनों को बनाने के लिए चाक का प्रयोग किया जाता था[250]। पाणिनि की व्याकरण वृति[251] से पता चलता है कि कुछ बर्तन बनाने वाले राजा के ही यहां रह कर राजकर्मचारी रूप में कार्य करते थे क्योकि राजकुलाल शब्द के उल्लेख से ऐसा ही आभास मिलता है। मिट्‌टी के वर्तनों मे तस्तरी, भगोना, घडे का निर्माण चाक के ही द्वारा निर्मित किया जाता था। अरिकामेडु में हुए उत्खनन के दौरान पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्रों से आयात किए गये मिट्‌टी के बर्तनो के अलावा स्थानीय लोगो द्वारा निर्मित बर्तन भी पर्याप्त मात्रा में मिले है, जिनके बारे में अनुमान किया जाता है कि इनका निर्माण दैनिक जीवन की आवश्यकताओ को ही ध्यान में रखकर किया गया होगा। थाली पात्र परम्परा में भी अधिकाश बर्तन चाक निर्मित ही हैं। अनाज भरने के लिए निर्मित बडे बडे घडे, मटके ही मुख्य वर्तन पाये गये हैं। वर्तन प्रायः भूरे एवं लाल रंग के है जिनके ऊपर गहरे लाल रंग की पट्‌टियां हैं। अरिकामेडु के अलावा रंगमहल, वैराट, तक्षशिला, वैशाली, हस्तिनापुर, राजघाट, कौशाम्बी, उज्जैन, रूपड, नवदाटोली के उत्खनन से भी काफी मात्रा में वर्तन मिले हैं जो इस उद्योग के विकसित रूप को ही प्रकट करते हैं। वाण से बचने के लिए ढ़ाल बनाने का कार्य भी इस उद्योग के ही अधीन आता था[252]। जैन ग्रन्थ आवश्यकचूर्णि[253] से पता चलता है कि कुम्भकार अपने बर्तनों को कुम्भशाला में

निर्मित करता था, पकनशाला में पकाने के बाद भाण्डशाला में उन्हें एकत्रित करता था।

भारत मे मूर्तिपूजा इस काल तक काफी प्रचलित हो चुकी थी तथा मूर्तियों का निर्माण भी व्यापक स्तर पर हुआ करता था, इसके बारे में सन्देह की कोई जगह नहीं है। अगविज्जा में[254] साखान व्यावसायियो की सूची में देवणों (देवताओं की मूर्ति का व्यापार करने वाले) का उल्लेख आया है इस संदर्भ में यह भी स्मरणीय है कि यही काल गान्धार, भरहुत, सांची, मथुरा, सारनाथ, कौशाम्बी, अमरावती, बोधगया इत्यादि शैली के प्रादुर्भाव और विकास का काल है। इसी काल से संग्रहीत मूर्तियां और तक्षणकला के अवशेषों की बहुलता इसी बात की परिचायक है कि मूर्तियों का निर्माण करना एक विकसित उद्योग का रूप ले चुका था। इसी काल से इतनी अधिक मात्रा में भिन्न–भिन्न प्रकार एव बहुसंख्यक मूर्तियो का मिलना सिर्फ उस काल के धार्मिक विश्वास और कलात्मकता का परिचायक मात्र ही नहीं वल्कि साथ–साथ इस बात के भी प्रमाण है कि मूर्ति बनाना और उसका व्यापार करना एक विकसित उद्योग का रूप ले चुका था। पत्थर की मूर्तियों के अतिरिक्त मिट्टी की भी मूर्तियां बनायी जाती थी जिसके प्रमाण ज्यादे मात्रा में तो नही मिले हैं फिर भी मिट्टी की मूर्तियां और खिलौने बनाने की प्रथा काफी प्रचलित थी। उत्खनन से ऐसा प्रतीत होता है कि धातु निर्मित मूर्तिया बनाने की प्रथा इस काल में सम्भवतः उतनी प्रचलित नहीं थी जितनी मध्यकालीन दक्षिण भारत में हमे मिलती है।

दन्तकारी उद्योग भी इस युग में काफी ख्याति प्राप्त कर चुका था। सिलावन्नग जातक[255] से जानकारी मिलती है कि वाराणसी दन्तकारी उद्योग का केन्द्र बन चुका था और उस शहर में दन्तकारी के काम करने वालों की एक अलग ही वस्ती बन चुकी थी, यहाँ बात "दन्तकारवीथी" शब्द से प्रमाणित होती है। कलिंगबोधिजातक[256]

मे कलिंग राज्य के दन्तपुर शहर का उल्लेख मिलता है जो इसी उद्योग के केन्द्र के रूप मे प्रसिद्ध था। इसके अलावा कलिंग, अग, करुष आदि स्थान भी एक विकसित दन्तकारी उद्योग के केन्द्र के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। कौटिल्य ने[257] इन स्थानों की हाथियों को इस उद्योग के लिए सबसे अच्छा तथा दशरन और पश्चिमी भागो की हाथियो को मध्यम एवं सौराष्ट्र–पाचजन्य प्रदेश की हाथियो को घटिया किस्म का माना। हाथी दात से बनी वस्तुओ की मांग समाज मे काफी थी डा. जे एम. राय[258] ने लिखा है कि हाथियों के शिकार करने वालों का एक अलग अपना समुदाय रहा होगा जो कि प्रायः हाथियों का शिकार करके उनसे प्राप्त दांत के माध्यम से अपनी जीविका चलाते थे। कासवजातक[259] से जानकारी मिलती है कि वाराणसी के एक निर्धन व्यक्ति ने अपने को किस तरह हाथी के शिकारी के रूप मे बदला। सीलवनाग जातक[260] से पता चलता है कि शिकारी शिकार करने जंगलों में जाया करते थे। हाथी दांत से बनने वाली वस्तुओं का प्रयोग समाज के धनी लोग ही प्रायः किया करते थे[261]। बच्चो के लिए बन्दरों की हड्डियों से छोटी छोटी वस्तुए तैयार किए जाने का उल्लेख हमें मिलता है[262] दन्तकारी उद्योग का प्रमाण हमें व्यापक रूप से दन्तकारों के यहां देखने को मिलता है जो कुर्सियों, राज सिहासनों, खम्भो आदि में जड़े होते थे। कैकेयी के राजमहल की सभी चौकियां एवं आसनों में हाथी दांत का प्रयोग किया गया था[263]। कुम्भकरण के राजमहल के मेहराब को हाथी दांत के प्रयोग करके ही सजाया गया था। उसके पलंग के पैर भी हाथी दांत से जडे थे[264]। ये सभी बातें विकसित दन्तकारी उद्योग की बात करती है।

प्रस्तुत काल के आर्थिक जीवन का विवेचन भले ही संक्षिप्त है लेकिन उसमें अन्तनिर्हित मौलिक प्रवृत्तियां ही से स्पष्ट है कि तत्कालीन आर्थिक क्रियायें और उत्पादन के क्षेत्र बहुत ही प्राणवान और बहुमुखी थे, इसके सजीव चित्रण मिलते हैं। ऐसी परिस्थिति में पेशों की भिन्नताएं और प्रकारों की विविधताओं का परिलक्षित

होना स्वाभाविक बात लगती है और साथ ही साथ समाज जीवन में पेशेवर वर्गों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो रही थी, इसके भी पर्याप्त साक्ष्य सुलभ है।

भारतीय जीवन में धर्म का स्थान बहुत ही प्रधान रहा है। समाज मे कोई भीकार्य ऐसा नहीं होता था जिसका धर्म से किसी न किसी प्रकार सम्बन्ध न रहा हो और किसी न किसी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान से भी सम्बन्धित न रहा हो। जन्म से मृत्यु तक समग्र मानव जीवन को सस्करो की एक श्रृंखला मे गूंथ दिया गया है। इसके अतिरिक्त द्विजवर्ण के लिए दैनिक धार्मिक अनुष्ठान भी उनके आवश्यक कर्तव्य माने गये। आपात दृष्टि से ऐसे कर्मों को विशेष रूप से आधुनिक दृष्टिकोण से जिन कार्यों को धर्मनिरपेक्ष माना जाता है, उनके साथ भी धार्मिक अनुष्ठान जुडे हुए थे। उदाहरण के लिए कौटिल्य ने लिखा है कि खेतों में बीज बोने से पहले मत्रों को पढा जाता था[265]। इसके अलावा भी अनेक प्रकार के ऐसे कार्य थे जिनका सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार से धार्मिक अनुष्ठानों से था। ऐसी परिस्थिति मे जिन सामाजिक एव सांस्कृतिक परिवेश, में जहां धार्मिक अनुष्ठानों की इतनी बहुलता थी, वहा समाज की एक काफी बड़ी संख्या द्वारा धार्मिक क्रिया कलापों अनुष्ठानों आदि को ही अपनी जीविका के लिए साधन बनाना स्वाभविक बात थी।

धार्मिक क्रियाकलापों एवं अनुष्ठानो को सम्पन्न करने का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही प्राप्त था। ब्राह्मण ही पुरोहिती कर सकता था, ऐसा भी उल्लेख मिलता है[266]। जैमिनी ने लिखा भी है कि क्षत्रिय या वैश्य ऋत्विक नहीं हो सकता अतः सत्र (ऐसा यज्ञ जो बहुत दिनों तक या वर्षों तक चलता रहे) केवल ब्राह्मणो द्वारा ही सम्पादित हो सकता है[267]। वैदिक ग्रंथों में अपवाद रूप में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहां अन्य वर्ण से सम्बन्धित व्यक्ति का पुरोहित के रूप में उल्लेख किया गया है[268]। धृष्ठतावश यज्ञ आदि धार्मिक कार्य सम्पन्न करने पर अन्य वर्ण के लोगों

को समाज मे तिरस्कार भाव का सामना करना पडता था, ऐसा साहित्यिक साक्ष्यो से ज्ञान होता है। रामायण मे उल्लेख आया है कि त्रिशंकु को बचाने के लिए विश्वामित्र ने यज्ञ कार्य आरभ किया तब उस परिस्थिति मे देवताओं ने उनकी छवि को स्वीकार नही किया[269]। इस विषय मे इतना जरूर कहा जा सकता है कि सभी ब्राह्मण न तो पुरोहित ही थे और न तो सभी ब्राह्मण लोग धार्मिक अनुष्ठानो को ही सम्पन्न किया करते थे। अध्ययनकाल मे विविध प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों, संस्कारो एव धर्म विहित कार्यों को सम्पन्न करने वाले लोगो को कई वर्गों मे रखा गया है जो कि अपनी विशिष्टताओं के कारण समाज मे काफी सम्मान जनक स्थान प्राप्त कर चुके थे।

धर्म के विकास और परिरक्षण में पुरोहित वर्ग की भूमिका काफी महत्वपूर्ण लगती है। पौरोहित्य कार्य करने का अधिकार किसको है, इस प्रश्न को लेकर समाज के विकास के आरभिक चरण में ब्राह्मण–क्षत्रिय वर्ण में काफी खींचातानी की झलक मिलती है[270]। बाद मे ब्राह्मण को ही इस अधिकार की प्राप्ति हुई और पुरोहिती कार्य पर ब्राह्मणो का एकाधिकार हो गया।

साहित्यिक साक्ष्यों के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि न केवल वैदिक काल मे ही अपितु सूत्रकाल जातक काल आदि में पुरोहित का सम्बंध राजतंत्र से था। कई प्रकार के विस्तृत यज्ञ और धार्मिक अनुष्ठान पुरोहित वर्ग तथा राजतंत्र के घनिष्ठ सम्बंधों पर प्रकाश डालते हैं पुरोहितों में भी एक विशेष प्रकार के लोग हुआ करते थे जिनको राजपुरोहित कहा गया है जिनके ऊपर राज्य और राजा से सम्बन्धित धार्मिक कार्यों, संस्कारों, अनुष्ठानों को सम्पन्न करने का दायित्व था। ऐसी भी जानकारी मिलती है कि राजकार्यों के अलावा सासारिक विषयों पर भी ऐसे लोगों का प्रभाव एवं महत्व कुछ कम नहीं था[271]। सभी ब्राह्मण ग्रंथ इस बात से सहमत हैं कि

राजा को एक पुरोहित की नियुक्ति करनी चाहिए और उसे राजतंत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान भी प्रदान करना चाहिए। वशिष्ठ के अनुसार यह विदित है कि वह स्थान जहा ब्राह्मण पारिवारिक पुरोहित के रूप में नियुक्त होते हैं, फलता फूलता है[272]। मनु ने भी लिखा है कि राजा आथर्वण विधि से पुरोहित और यज्ञ कर्म करने के लिए ऋत्विक को वरण करें[273]। याज्ञवल्क्य में भी ऐसा लिखा है और राजा को उससे मत्रणा करने तक की सलाह दी है[274]। वैदिक व स्मार्त यज्ञ करके राजपुरोहित राजा की ऐहिक उन्नति व पारलौकिक कल्याण का साधन प्रस्तुत करता था। गौतम ने यह भी कहा कि पुरोहित सिर्फ यज्ञ सम्पादन और धार्मिक अनुष्ठानो मे पौरोहित्यमात्र ही नही करता वल्कि राजा और राज्य की सफलता और चतुर्दिक उन्नति के लिए ज्योतिषी का भी कार्य किया करता था। दैवी उत्पातो के शमन के लिए शान्ति कर्म, विजययात्रा के शुभारंभ के लिए स्वस्त्यनन, राजा के दीर्घायु होने के लिए आयुष्मन कर्म, नवीन राजप्रासाद मे प्रवेश के लिए वास्तुहोम, शत्रुओं को वश में करने के लिए सवनन , शत्रुनाश के लिए अभिचार कर्म, शत्रुओं की समृद्धि नष्ट करने के लिए धार्मक अनुष्ठान इत्यादि कार्य को भी गौतम ने राजपुरोहित का कर्म माना[275]। इस कथन से लगता है कि राजपुरोहित राजा का न केवल घरेलू यज्ञकर्ता ही था वरन् राज्य के भी कल्याण एवं समृद्धि से सम्बद्ध था। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि यदि राजा पुरोहित की सहायता नहीं लेता तो देवता लोग उसके हवन को स्वीकार नहीं करेगे। राज्याभिषेक के समय राजा उसे तीन बार नमस्कार करता था। जब तक वह ऐसा करता था, तबतक ही उसकी समृद्धि होती थी[276]।

पुरोहित के कार्य महत्वपूर्ण और व्यापक थे, ऐसा साहित्यिक साक्ष्यों में विहित की गयी उसके लिए योग्यताओं और विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है। ऋग्वेद में भी कहा गया है कि राजा द्वारा पुरोहित को यथोचित सम्मान मिलने पर शत्रुओ पर जय और प्रजा की राजनिष्ठा उसे प्राप्त होती थी[277]। बौधायन ने लिखा है

कि राजा क पारिवारिक पुरोहित का चुनाव करे जो सभी क्रिया कलापो को सम्पन्न करने मे प्रमुख है[278]। महाभारत में वर्णन मिलता है कि सत् की रक्षा करने वाला, असत् का निवारक, विद्वान–बहुश्रुत, धर्मात्मा, मत्रविज्ञ, व्यक्ति को ही राजा राजपुरोहित नियुक्त करे[279]। याज्ञवल्क्य मे भी लिखा है कि ग्रहों के उत्पात एवं शमन के ज्ञाता, सभी शास्त्रो के ज्ञान और अनुष्ठान से सम्मिलित दण्डनीति मे कुशल तथा अथर्वाङिरस में प्रविष्ठ ब्राह्मण को ही राजा पुरोहित नियुक्त करे[280]। कौटिल्य ने भी उसकी योग्यताए विहित की हैं यथा उसे उन्नत कुल में उत्पन्न, शक्ति तथा सदाचार सम्पन्न, सभी वेदों और व्याकरण आदि वेदागों मे पारंगत–देवी विपत्तियो तथा मानवीय आपदाओ को अथर्व वेदोक्त मत्रो द्वारा हटा देने में कुशल होना चाहिए। जैसे शिष्य गुरू का, पुत्र पिता का, सेवक स्वामी का उसी प्रकार पुरोहित का अनुसरण राजा करे[281]। उसके महत्व की बात इससे भी स्पष्ट हो जाती है कि मंत्रियों के चयन के समय उसकी सलाह को गुरुत्व दिया जाता था[282]। सेना को युद्ध भूमि मे भेजने से पहले कई प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानो को भी सम्पन्न करने का दायित्व इसी के ऊपर था[283]। ऐसा लगता है कि उसका काम शत्रु के अनिष्टकारक अनुष्ठानों का प्रतिकार करना और अर्थशास्त्र में वर्णित पुरोहित कर्म द्वारा राष्ट्र का अभ्युदय करना था। वह राजसेना के हाथी और घोड़ों को मंत्रपूत करता था ऐसी बौद्ध ग्रंथो से जानकारी मिलती है[284]। राजा के साथ युद्ध भूमि में जाकर अपने मंत्रो और स्तुतियो द्वारा देवताओं को प्रसन्न करके विजय श्री प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने की बात व्यावहारिक भी लगती है। दस राजाओं की लडाई में विश्वामित्र हमेशा राजा सुदास के साथ थे और उन्हीं के मंत्रों से प्रसन्न होकर ही विपाशा और शुतुद्र नदियों का जल उतर गया और सुदास की सेना नदी को सुगमता से पार कर गयी[285]। राजा के द्वारा दीर्घकालीन यज्ञ की दीक्षा लेते समय राज्य का कार्य उसके द्वारा सचालित होने की बात भी उसके महत्व की बात को और काफी स्पष्ट करती

है[286]। मनु ने तो यह भी लिखा है कि सारी गुप्त मंत्रणाए राजा उसी के साथ करता है और यह राजा को निर्देश भी दिया है कि राजा धर्मादियुक्त विशिष्ट ब्राह्मण के साथ सन्धि, विग्रह, यान, अम्सन, द्वेधीभाव और सन्श्रय इन : गुणों से युक्त श्रेष्ठ मत्र की मत्रणा करे[287]। ऐतरेय ब्राह्मण मे पुरोहित को राष्ट्रगोप अर्थात् राज्य की रक्षा करने वाला कहा गया है[288]। मत्रियों के साथ मत्रणा और पुरोहित की सलाह लेकर राजकार्य सचालन एक कुशल राजा के लिए आवश्यक माना गया है[289]। गौतम ने भी लिखा है कि पुरोहित की सहायता से धार्मिक कृतियों का संपादन करने वाल राजा हमेशा सौभाग्यशाली होता है[290]। मंत्रियो मे पुरोहित का ही पद ऐसा था[291]। इन तमाम साक्ष्यों से राजपुरोहित की कार्य शैली प्रभाव एवं महत्व की ही बात स्पष्ट होती है।

वैदिक सहिताओ में श्रोतपुरोहितों को यज्ञ में सम्पादित होने वाले कार्यों के आधार पर सोलह वर्गों में रखा गया है जिनकी चार कोटियाँ हैं यथा–होतृ, उदगातृ, अध्वर्यु एवं ब्रह्मा। महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में व्यास ने ब्राह्मण तथा धौम्य ने होतृ की भूमिका निभायी[292]। यज्ञ एवं कर्मकाण्ड की उपासना पद्धति की भावना इसमें निहित थी और ऐसे पूरोहित उन सभी द्विजों के लिए जो गृहकर्मकाण्ड तथा संस्कार सम्पन्न करवाना चाहते थे, के लिए पौरोहित्य कार्य करते थे। भारतीय सस्कृति के कर्मकाण्डी पक्ष के परिरक्षण एवं परिवर्धन में ही इन पुरोहितों की भूमिका महत्वपूर्ण नही थी वल्कि साथ ही साथ व्यक्तियों के सनातन वैदिक धर्म के सांस्कृतिक संक्रमण में भी इनकी महत्वशाली भूमिका को प्रधान स्थान मिला पवित्र धार्मिक परम्परा एवं ज्ञान के अविभावक के रूप मे, शिक्षा, साहित्य एव भाषा के प्रचारक रूप में भारतीय संस्कृति के निर्माण प्रसार एवं अभिवर्द्धन में भी इस वर्ग के लोगों की भूमिका काफी सराहनीय रही। ऋत्विक् के द्वारा देवता की स्तुतिपरक मंत्र पढे जाते थे और हवि के रूप में विविध धान्य अथवा गोरस में निर्मित अन्न, पशु

अथवा सोमरस अर्पित किए जाते थे। 'यदूम पुरुषों 'लोके तदन्ना तस्य देवता[293]। अनेक यज्ञो में ऋत्विक् के कार्यों का चतुर्धा विभाजन दृष्ट होता है। होता नाम का ऋत्विक ऋकसहिता की ऋचाओ का पाठ करता था। अध्वर्यु कर्म का भार सम्हालता था और यजुर्वेद से सम्बद्ध होता था। उद्गाता सामगान करता था और ब्रह्मा समस्त यज्ञकर्म का अध्यक्ष होता था। श्रोतयज्ञो को हविर्यज्ञ एवं सोम इन दो विभागो मे बाटा गया है[294]। भारतीय समाज एव सस्कृति को विकसित करने में उस वर्ग के इन लोगो ने स्थायित्व प्रदान किया, ऐसा कुछ विद्वानां ने माना[295]। ऋत्विक उद्गाता, होता, अर्ध्वयु की आवश्यकता उन लोगो को थी जो समाज में धनाढ्य एवं प्रभुतासम्पन्न रहे होगे। समाज के सामान्य लोगों, जिनकी संख्या अधिक थी, के धार्मिक अनुष्ठान जैसे व्रत, तर्पण, सस्कारों के अनुष्ठान, दान, पिण्डदान, श्राद्ध इत्यादि को सम्पन्न करवाने वाले साधारण पुरोहितों की भी संख्या बडे पुरोहितों की अपेक्षा अधिक रही होगी। धार्मिक क्रिया–कलापो से जीविका चलाने वाले लोगों में से ऐसे ही साधारण पुरोहितो की भी संख्या समधिक थी, ऐसा लगता है।

भक्ति पूजापद्धति के विकास के कारण देवताओं की मूर्तिपूजा काफी महत्वपूर्ण हो चुकी थी और इसी ने ब्राह्मण समाज में एक विशेष वर्ग को भी जन्म दिया जो मन्दिरो की ही पूजा से सम्बन्धित हो चला जिसे साहित्यिक ग्रंथों में देवलक कहा गया है। स्मृतियो में देवमूर्ति के प्रति आदरभाव प्रदर्शित किया गया है तथा देवताओं की मूर्ति पूजा को काफी महत्व दिया गया है लेकिन मनु ने कहीं–कही देवलकों की निन्दा भी की है। मनु का स्पष्ट कथन है कि ब्रह्मचारी नित्य स्नानकर देवताओ, ऋषियों तथा पितरों का तर्पण, शिव विष्णु आदि देव प्रतिमाओं का पूजन तथा प्रातः एवं सायंकाल हवन करे[296]। देवप्रतिमाओ का आदर स्नातकों द्वारा किया जाना चाहिए, ऐसा भी विवरण मिलता है[297]। इसके अलावा भी अन्य जगहों पर देव प्रतिमाओं के महत्व की बात स्पष्ट झलकती है[298]। लेकिन उनका यह भी कथन है कि

मन्दिरो के पुजारी (वेतन लेकर मन्दिरो में पूजा करने वाला) को हव्य एव कब्य (देवगार्य एव श्राद्ध) भोजन न करावें[299]। महाभारत पर टीका लिखते हुए नीलकण्ठ ने लिखा है कि देवलक ऐसे ब्राह्मण थे जो केवल धन प्राप्ति के लिए ही मन्दिरो मे पूजा करते थे[300]। उन्होने ऐसे ब्राह्मणों को चाण्डाल सम कहा। इतना होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण धर्म को जनप्रिय बनाने मे इन मन्दिरो के पुजारियों का काफी योगदान रहा। इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा के बारे में मनु का कथन सही भी हो सकता है लेकिन नीलकण्ठ के कथन से यह भी स्पष्ट होता है कि ऐसे लोगो की आर्थिक स्थिति काफी ठीक रही होगी जैसा कि आधुनिक काल मे भी प्राय. देखने को मिलता है।

भारत वर्ष धर्म प्रधान देश है। अतः यहॉ धर्म पर विशेष ध्यान दिया गया है "धर्मो रक्षति रक्षितः"। धर्म ही एक ऐसा जीवन तत्व है जिसके आधार पर मनुष्य और पशु की परख होती है। इस प्रकार मनुस्मृति प्राचीन धर्म ग्रन्थ के संक्षिप्त तथा परिवर्द्धित रूप में प्रकट हुई है। यह ग्रन्थ आज भी हिन्दुओं के आचार–विचार का प्रमाणिक प्रतिनिधित्व कर रहा है। इसका प्रभाव भरत के बाहर भी पडा है। चम्पा के एक लेख मे मनु का श्लोक मिलता है। वर्मा का धम्म पट् मनुस्मृति पर केन्द्रित है मनुस्मृति सनातन परम्परा, लोकमत तथा अनुभव का मनोहारी धर्मग्रन्थ है जिसमे समाज धर्म तथा राजधर्म को पर्याप्त पोषक तत्व मिला है। आज यह ग्रथ भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था देने में, न्यायालयों ने न्याय दिलाने में अमूल्य योगदान कर रहा है। इस प्रकार मनु का व्यक्तित्व तथा कृतित्व सनातन धर्म की धुरी पर अवलम्बित है। सम्पूर्ण मनुस्मृति 12 अध्यायों में विभाजित है सर्व प्रथम सरविलियमजोन्स ने संसार को मनुस्मृति का अग्रेजी अनुवाद 1794 ई. में दिया था। साथ ही वी. एन. मांडलिक ने विषयों पर सभी महत्वपूर्ण टिप्पणियॉ 1886 में की थी। मनुस्मृति अपने काल की सभी सूचनाओ के लिए इतिहासकारों की प्रेरणा स्रोत रही

है। इसमे प्राचीन भारत के राजनीति, समाज, अर्थ व्यवस्था और न्याय प्रक्रिया का समुचित समावेश है। यह ग्रन्थ 200 ई0 पू0 से 200 ई0 तक के सूचनाओ के लिए सीधी विधि का स्रोत है[301]। यह काल विदेशी आक्रान्ताओं का काल है तथा छोटे-छोटे कई राज्यो का उदय भी इसी काल मे हुआ था। व्यापार एव वाणिज्य की दृष्टि से भी यह काल महत्वपूर्ण था। इसी समय वैक्ट्रियन, यवन ग्रीक शक, पार्थियन, कुषाण, उत्तरी भारत मे आकर बस गये[302]। इस काल मे वर्ण पर आधारित परम्परागत समाज व्यवस्था को विदेशियो के आक्रमण से भी खतरा उत्पन्न हो गया था। भारत मे यवन, पर्थियन शक-कुषाण आदि विदेशी शासकों की उपस्थिति जिनके पास राजनीतिक एव आर्थिक शक्ति थी, वर्ण व्यवस्था के लिए सकट उत्पन्न कर रही थी। ब्राह्मण उन्हे म्लेच्छ कहकर उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते थे। इस कारण स्मृतिकारो ने उन्हे निम्न कोटि के क्षत्रिय की उपाधि प्रदान कर दी। इस काल मे शिल्प का विकास पूर्व के कालों के सापेक्ष ज्यादा हुआ।

मनु ने कहा कि शुद्रों को शिल्पियों का व्यवसाय तभी अपनाना चाहिए जब सीधे उच्च वर्णों की सेवा से उनकी जीविका नही चल सके[303]। परन्तु ऐसा होने पर भी इस काल में शिल्पियो की संख्या तो काफी बढी ही और उनकी परिस्थितियों में भी सुधार हुआ। यह बात बढइयों, लोहारों, गंधियों, जुलाहों, सुनारों और चर्म व्यवसायियों द्वारा बौद्ध भिक्षुओं को उपहार स्वरूप दी गयी अनेक गुफाओं, स्तम्भो, पट्टों ताबूतों आदि से प्रमाणित होती है[304]। इनके अतिरिक्त उत्कीर्ण लेखों में रंगसाजों, धातु और हाथी दॉत के काम करने वाले जौहरियों, मूर्तिकारों और मछुओं के भी कार्य दिखाई पडते हैं[305]। गंधियों और कुछ हद तक स्वर्णकारों को बार-बार उदार उपासक कहा गया है, जिससे लक्षित होता है कि शिल्पियों के कई समृद्ध वर्ग वन गए थे। यद्यपि गंधियों की तरह जुलाहों की चर्चा दानपत्रों में बार बार नहीं मिलती, फिर भी मनुस्मृति में उपलब्ध प्रमाण से ज्ञात होता है कि शिल्पियों के रूप में

उनका स्थान महत्वपूर्ण था, क्योंकि कहा गया है कि वे ग्यारह पल का भुगतान करे और चूक होने पर वारह पल दें[306]। स्पष्ट है कि येकर जुलाहों द्वारा तैयार किए गए सामान पर वस्तु के रूप मे लिए जाते थे। प्राय· मथुरा[307] और अन्य नगरो मे उत्पन्न वस्त्रो के व्यापार में इन जुलाहों की खूब चलती थी। उत्कीर्ण लेखो से पता चलता है कि अधिकाश शिल्पी मथुरा और पश्चिमी दक्कन क्षेत्र में सीमित थे, जहाँ रोम के साथ बढते हुए व्यापार से उन्हें अपना विकास करने का अवसर मिलता था।

पुरालेख बताते हैं शिल्पी अपने प्रधानो के अधीन संगठित थे जो प्राय राजा के लिये पात्र होते थे हमे आनन्द के उपहार की भी बात सुनने में आई है जो श्रीशातकर्णि के शिल्पियों का प्रमुख था[308]। किन्तु साहित्यिक प्रमाण बताते है कि पूर्वकाल की अपेक्षा इस काल मे शिल्पियों के संघ बहुत बडे पैमाने पर बने थे। महावस्तु ने एक सूची में 11 प्रकार के शिल्पियों का उल्लेख किया है, यथा मालाकार, कुंभकार, बढई, धोबी ,रंगरेज, पात्र निर्माता, स्वर्णकार, जौहरी, शंख सीपी वस्त्र निर्माता, आयुधिक और रसोइया जो अपने अपने प्रधानों के अधीन काम करते थे[309]। जो अपने अपने प्रधानों के अधीन कार्यकरते थे। इसी स्रोत से राजगृह के अष्टादश श्रेणियों का उल्लेख मिलता है जिसके अन्तर्गत स्वर्णकार, गंधी, जौहरी, तेली, आटा पीसने वाले आदि भी है। इस सूची में फल कद, आटा और चीनी के विक्रेता भी शामिल हैं[310]। स्वर्णकार और जौहरी का उल्लेख दोनों ही सूचियों में हुआ है और मालूम होता है कि इस काल में लगभग दो दर्जन शिल्पी संघ वर्तमान थे[311]। यह भी ध्यान देने योग्य है कि शिल्पी संघों की दूसरी सूची जातकों में वर्णित सूची से बिल्कुल भिन्न है[312]। यद्यपि शिल्पियो की नियुक्ति राजा करता था[313]। फिर भी संभव है कि शिल्पी संघों की संख्या बढने से शिल्पियों पर राज्य का सीधा नियन्त्रण कमजोर पड़ गया हो। विशेष महत्व की बात यह है कि अर्थशास्त्र में भी उतने प्रकार के शिल्पी नहीं दिखाई पडते जितने इस अवधि में देखने में आते हैं। महावस्तु मे

छत्तीस प्रकार के कामगारो की एक सूची दी गई है जो राजगृह नगर में रहते थे[314] ।यह सूची व्यापक नही मालूम होती, क्योकि इसके अंत में कहा गया है कि सूची में जितने कामगारो का उल्लेख हुआ है, उनके अतिरिक्त और भी कामगार थे[315]। मिलिदपन्हो मे इससे भी लम्बी सूची दी गई है, जिसमें लगभग 75 प्रकार के व्यवसाय गिनाए गये है जो अधिकतर शिल्पियों के थे[316]। बौद्धो की सूचियो के बहुत से शिल्पियो की चर्चा एक जैन ग्रंथ मे भी हुई है, जिसमें 18 प्रकार के शिल्पियो का उल्लेख हुआ है और एक खास बात यह है कि इस ग्रन्थ मे दर्जियों, बुनकरों और रेशम बुनकरो को भी आर्य शिल्पी बताया गया है[317]। इससे प्रकट होता है कि जैन इन शिल्पो को हीन नही मानते थे। इन शिल्पियों की सूची का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इस काल में कई नए शिल्पों का विकास हुआ। दीर्घ निकाय में दिये गये लगभग दो दर्जन शिल्पो[318] के मुकाबले हमे मिलिन्दपन्हों मे पॉच दर्जन शिल्पों की चर्चा मिलती है। इनमें से आठ शिल्प धातु कर्म संबंधी हैं[319]। जिनसे अच्छी प्रगति का पता चलता है। ऐसा जान पडता है कि वस्त्र निर्माण, रेशम बुनाई[320] एवं अस्त्र–शस्त्र और विलास सामग्रियो[321] के निर्माण में भी अच्छी प्रगति हुई थी। इन सब बातों से पता चलता है। ऐसा जान पड़ता है कि वस्त्र निर्माण, रेशम बुनाई, एवं अस्त्र–शस्त्र और विलास सामग्रियों के निर्माण में भी अच्छी प्रगति हुई थी। इन सब बातों से पता चलता है कि इस काल के शिल्पियों ने तकनीकी और आर्थिक विकास के महत्वपूर्ण योगदान दिया था। ये शिल्पी अपने ग्राहकों से उस रूप मे नहीं जुडे थे, जिस प्रकार दास और कर्मकार अपने मालिकों से सम्बद्ध थे। इस तरह पतंजलि से हमें जानकारी मिलती है कि बुनकर (जुलाहे) स्वतन्त्र रूप से अपना काम करते थे[322]। दास और कर्मकार तो भोजन व वस्त्र पाने के उद्‌देश्य से काम करते थे किन्तु शिल्पी अपना काम करके मजदूरी पाने की आशा रखते थे।[323]

शिल्पियों के प्रकार :

शिल्प सामान्यतः उस अर्थ में प्रयोग होता है जिसमें कोई व्यापार या कार्य मे विशेष कौशल रखता है जैसे कारीगर और मिस्त्री ये लोग अपने कार्य मे पूर्ण स्वामित्व रखते है[324]। यद्यपि मनु के विधि शास्त्र मे शिल्पियो का प्रयोग आकस्मिक ही हुआ है, परन्तु इसमें बडी सख्या मे शिल्पकारो की सूची मिलती है। मनुस्मृति के अध्याय 3 से अध्याय 11 तक के बीच सोलह रूपों मे शिल्प का वर्णन है जिनमे कारीगर, मिस्त्री, हस्तशिल्प चित्रकार[325] आदि महत्वपूर्ण हैं। इस काल के कारूककर्माणि, शिल्पानि विविधानि[326] शब्द यह सूचित करते हैं कि इस समय बडी सख्या में कलाकार व शिल्पकार अपने अपने कार्य से ही द्विजों की सेवा मे लगे रहते थे। इस समय के जितने प्रकार के कलाकारो व शिल्पकारों का वर्णन हमें मिलता है उतना हमे कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे व बौद्ध ग्रन्थों में भी नहीं मिलता है[327]। मनुस्मृति मे कौशल से धन प्राप्ति के जो सात साधन बताये गये है उनमे कर्म योग का स्थान बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ये सात धर्म युक्त उपाय निम्नवत है[328]।

1. दान (धर्म युक्त पितृ सम्पत्ति का भग)
2. लाभ (मूलधन या मित्रादि से प्राप्त)
3. खरीदा हुआ
4 जय (धर्मपूर्वक किये गये युद्ध में विजय से प्राप्त)
5. प्रयोग (व्याज आदि से प्राप्त धन)
6 कर्मयोग (खेती तथा व्यापार आदि उद्योग करनेसे प्राप्त)
7. सत्प्रतिग्रह (शास्त्रोक्त दान से प्राप्त)

इसी प्रकार मनुस्मृति में जीवन निर्वाह हेतु दस हेतु बताये गये हैं जो अग्रलिखित है–

1 विद्या (वेद, वेदाग टीका तथा वैद्यक, तर्क विष निराकरण आदि की विद्या)

2. शिल्प (वस्त्र तैलादि को सुगन्धित करना)

3 भृति (दूतादि बनकर वेतन लेना)

4 सेवा (दूसरे की दासता नौकरी करना)

5 गोरक्षण (गौ तथा अन्य पशुओं का पालन सवर्धन आदि)

6. व्यापार

7. खेती

8. धैर्य (थोडे धन से भी सन्तोष से निर्वाह करना)

9. भिक्षा समूह

10. सूद

ये दस जीवन निर्वाह के हेतु है।

मनुस्मृति में लगभग पच्चीस प्रकार के शिल्पियों का वर्णन मिलता है। ये कारीगर दो बडे भागों में विभाजित थे इसमें प्रथम को साधारण शिल्पकार व दूसरे को धातु कर्म करने वाला कहा गया है। इनका विवरण निम्नलिखित रूप मे मिलता है।

जुलाहे:

भारतवर्ष में कपड़ा बुनने की कला एक महत्वपूर्ण शिल्प रहा है। यह इस काल मे भी पहले जैसे प्रगति कर रहा था। बुनकर इस समय कडे विधि विधान से बधे हुए थे[329]। यथा कपडा बुनने वाला (जुलाहा आदि) दशपल सूत के बदले में (माड़ी आदि से लगने से बढ जाने के कारण) ग्यारह पल कपडा दे, इसके विपरीत करने (कम

कपड़ा देने) वाले को राजा बारह पल दण्ड दिलावे (तथा स्वामी अर्थात सूत के बदले में कपड़ा लेने वाले को उचित कपड़ा दिलवाकर सन्तुष्ट करें) इस समय जुलाहे अनेक प्रकार के कपड़े यथा सूती ऊनी सिल्क चमड़े आदि का बनाते थे। एक स्थान पर ब्राह्मणादि तीनों वर्णों के वस्त्रों के बारे में कहा गया है कि ये कृष्णमृग, रूरमृग और बकरे के चमड़े को, सन, क्षैम, और भेड़ के बाल के बने कपड़ों को क्रमशः धारण करें[330]। इसी प्रकार अन्य स्थान पर ब्राह्मण का यज्ञोंपवीत कपास (कपास की रूई के बने सूत) का क्षत्रिय का यज्ञोपवीत सन के बने सूत का और वैश्य का यज्ञोपवीत भेड़ के बाल (ऊन) के बने सूत का ऊपर की ओर से (दक्षिणावर्त) बॅटा (ऐंठा) हुआ तीन लड़ी का होना चाहिए[331]। कपड़े दूसरे के पहने हुए नहीं धारण करना चाहिए[332] ऐसा मनुस्मृति में कहा गया है। इससे कपड़े का व्यवसाय समृद्ध हुआ होगा। वस्त्रों के साफ–सुथरा रखने के लिए मनुस्मृति में विधि विधान दिया गया है[333] कि रेशमी और ऊनी वस्त्रों की खरी मिट्‌टी से नेपाली कम्बलों की रीठे से पट्‌वस्त्रों की बेल के फलों से और क्षौम (अलसी आदि के छाल से बने) वस्त्रों की शुद्धि पिसे हुए सफेद सरसों के कल्क से होती है। इस प्रकार वस्त्रों के रख रखाव का शिल्प का खुब विकास हुआ था। वस्त्रों को चुराने पर वस्त्र का दो गुना दण्ड लगता था[334]। इसी प्रकार आपत्ति काल में वस्त्रो को न बेचने के लिए मनुस्मृति में कहा गया है सब प्रकार के सूत निर्मित एवं रंगे गये सन, अलसी, तथा उनके वस्त्र और विना रंगे हुए वस्त्र फल, मूल तथा औषधि को (आपत्ति काल में भी ब्राह्मण क्षत्रिय नहीं बेचें[335]। सूत कातने एवं कपड़ा बुनने में प्रायः सूती का ही प्रयोग किया जाता था। मनु गाय के बाल कें बने कपड़े का भी उल्लेख करते है जो बकरी व भेड़ के बाल के कपड़े से अच्छा माना जाता था[336]। कुल्लूक के अनुसार कुटप्पा[337] नामक कम्बल नेपाल से मंगाया जाता था। नेपाल[338] उस समय ऊनी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था। कुल्लूक द्वारा की गयी व्याख्या में जो क्षौम[339] का प्रयोग मिलता है यह एक प्रकार का वस्त्र होता है

जो अलसी के छाल से बना होता था। वस्त्र निर्माण में सन और मनगा का भी प्राय प्रयोग होता था जो जूट का बना होता था। इस काल के जुलाहे अपने शिल्प मे अधिक गुणवत्ता रखते थे[340]। उत्तम कपडो की माप भी अलग–अलग थी[341]।

बौद्ध साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि करघा, तकली व ढरकी आदि का प्रयोग इस काल मे किया जाता था। इस प्रकार इस काल में वस्त्र निर्माण उद्योग काफी फला फूला। बडी संख्या मे बुनकर मथुरा[342] क्षेत्र मे रहकर व्यापार आदि करते थे।

दर्जी :

इस काल में सिलाई का कार्य एक महत्वपूर्ण व्यवसाय के रूप मे जाना जाता था[343]। आभूषण[344] अमसुपट्ट[345], कपडो का स्तर[346] आदि से इस व्यवसाय की महत्ता पर प्रकाश पडता है।

रगरेज व धोबी :

मनुस्मृति मे रंगसाज व धोबी का कार्य भी एक महत्वपूर्ण पेशे के रूप में आया है। मनुस्मृति के चतुर्थ अध्याय में वर्णित है कि लोहार, मल्लाह, रंगसाज, सोनार, वसफोर और शस्त्र बेचने वाला इनके अन्न को न खावें[347]। अर्थात इनका कार्य आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण होते हुए भी समाज में मनु में इनको सम्मानजनक स्थिति नहीं दी थी।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर मनुस्मृति में कहा गया है कि शिकार के लिए कुत्ते को पालने वाला, मद्य बेचने वाला, धोबी रंगरेज, नृशंस और जिसके घर में उपपति हो वह इनके अन्न को न खावें[348]। इससे यह स्पष्ट होता है कि समाज मे रगसाजो को अन्य वर्णों के सापेक्ष कम सम्मान मिला हुआ था। इसी प्रकार एक जगह

पर मनुस्मृति मे कहा गया है कि रगरेज का अन्न खाने पर बल नष्ट होता है[349]। जबकि मनुस्मृति मे द्विजो के अन्न की महिमा का समाज मे सम्मानजनक ढग से वर्णन है यथा ब्राह्मण का अन्न अमृत रूप, क्षत्रिय का अन्न दूध रूप, वैश्य का अन्न रूप तथा शुद्र का अन्न रुधिर रूप है अत. शुद्र का अन्न अभोज्य है[350]। यद्यपि शिल्पकार एव रगसाज का वर्णन अलग–अलग रूपो मे हुआ है परन्तु बुद्धकाल तक इनका एक ही रूप मे वर्णन हुआ था साथ ही शिल्पकार व धोवी आपस मे व्यवसायिक रूप से काफी करीब थे। कपडो को धुलने के लिए अलग–अलग वस्तुओ का इस्तेमाल किया जाता था मनुस्मृति मे इसका उल्लेख हुआ है।

बढई :

मनु लकडी उद्योग के बारे में अठारह सन्दर्भ देते हैं जिसमें लकडी और लकडी से बनी वस्तुओं का वर्णन है लकडी उद्योग मौर्य काल से ही एक महत्वपूर्ण उद्योग के रूप में चला आ रहा था मनु ने कहा है कि दैनिक जीवन में प्रयुक्त काफी चीजें लकडी की बनी होती थी इनमें, हल, ढाल, फावडा, रथ, बिस्तर, ऊँटगाडी, घोडागाडी, मूसल व उपयोगी वस्तुएँ महत्वपूर्ण हैं[351]। मनुस्मृति के अनुसार इन उपयोगी वस्तुओं के बनाने के लिए शिल्पकार अपने व्यवसाय में हमेशा व्यस्त रहते थे।

मनु के अनुसार काण्ठ उद्योग के लिए महत्वपूर्ण वृक्षों की कटाई करने पर आर्थिक दण्ड दिया जाता था[352]। मनु ने कहा कि वृक्ष आदि सब पौधों के फल–फूल पत्ता तथा लकड़ी आदि के द्वारा जैसा–जैसा उपभोग होता हो उनको (काटने आदि से) नष्ट करने वाले अपराधी को वैसा–वैसा ही दण्ड देना चाहिए ऐसा शास्त्र–निर्णय है। एक अन्य स्थान पर यह कहा गया है कि तृण, लकड़ी, पेड़, सूखा अन्न, गुड़,

कपडा, चमडा और मास इनको चुराने पर तीन रात उपवास करें[353]। इस प्रकार काष्ठ उद्योग समाज में सम्मानजनक स्थिति को प्राप्त करता दिखाई देता है।

चर्मकार :

मनु ने प्रसग वश चर्मकारो का भी उल्लेख किया है साथ ही इनके द्वारा निर्मित वस्तुओ, जूते, वैग, आभूषण आदि का भी वर्णन किया है। एक स्थान पर मनु ने कहा है कि[354] राजा का अन्न तेज को, शूद्र का अन्न ब्रह्मचर्य को, सोनार का अन्न आयु को और चमार का अन्न यश को लेता है। अतः इनके अन्न को नही खाना चाहिए। इनकी सामाजिक स्थिति के बारे में मनु द्वारा कही बतो से पता चलता है कि निषाद जाति वाले पुरुष बैदेह जाति वाली स्त्री से "कारावर" चमार जाति वाले पुत्र को उत्पन्न करता है। और बैदेहक जाति वाला पुरुष तथा कारावार जाति वाली स्त्री मे 'आन्ध्र और मेद', सज्ञक जाति वाले पुरुष को उत्पन्न करता है[355]। चमडा उद्योग को इस समय तीन वर्गों में विभक्त किया गया था– 1. कर्मकार 2. धीगवाना 3 कारावारा[356]। इस प्रकार इस काल में चमडा उद्योग एक महत्वपूर्ण उद्योग था।

वास्तुकार :

मनु स्मृति में स्थापत्य के बारे में सीधे साक्षात्कार होता है[357]। स्थापत्य के रूप में प्रयुक्त सामग्री यथा ईट, पत्थर, भूंसी, ठीकरा, राख, रोड़ा, बालू[358] का उल्लेख मनुस्मृति मे मिलता है। इस काल में स्थापत्य मे बहुत से लोग लगे हुए थे जिससे उनकी जीविका चलती थी।

मूर्तिकार एवं पत्थर काटने वाले :

मनुस्मृति में पत्थर और पत्थर से निर्मित वस्तुओं के बारे में उल्लेख मिलता है[359] इस प्रकार पत्थर काटने का उद्योग विकासशील, उद्योग के रूप में जाने जाना

लगा था। इस समय पत्थर उद्योग दो रूपो मे ज्यादा जाना जाता था। इसमे प्रथम है– स्थापत्य व द्वितीय है– मूर्ति शिल्प।

कुंभकार :

इसकाल में मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का संदर्भ मिलता है। इसका व्यापार बहुत उन्नति पर था। मनुस्मृति में बर्तनों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए सदर्भ है कि[360] –

न पादौ धावयेत्कास्ये कदाचिदपि भाजने।

न भिन्न भाण्डे मंज्जीत न भाव प्रतिदूषिते।। (iv-65)

कॉसे के बर्तन में कभी पैर न धुलवाये (तॉबा, चॉदी और सोने के वर्तनों को छोडकर अन्य किसी धातु के बने हुए) फूटे बर्तनो में तथा जो बर्तन अपने को न रुचे, उनमें भोजन न करें। इसी प्रकार कर के रूप मे मिट्टी के बर्तन का छठा भाग लेने के लिए भी कहा गया है जो मिट्टी के पात्र की महत्ता को प्रतिपादित करता है। इसी प्रकार मिट्टी के बर्तन के नष्ट होने पर इसका पॉच गुना राजा के द्वारा दण्ड लेने की बात मनुस्मृति मे कही गयी है–

चर्मचार्मि कभाण्डेषु काष्ठलोष्टमयेषु च।

मूल्यात्पच्चगुणों दण्डः पुण्य मूलफलेषु च।।viii - 289।।

इसी प्रकार मिट्टी के बर्तन आदि के चुराने पर दोगुने दण्ड की व्यवस्था चोर पर की गयी है–

वेणु वैदल भाण्डानां लवणानां तथैव च।

मृन्मयनां च हरणे मृदो भस्मन एवं च।।viii – 327।।

तेली :

मनु के काल में तेल पेरना कारीगरो का एक महत्वपूर्ण पेशा बन गया था। परन्तु लगता है कि मनुस्मृति मे इनका सामाजिक स्तर अन्य वर्णों के सापेक्ष नीचा ही था क्योंकि[361] –

अगारदाही गरद· कुण्डाशी सोम विक्रयी।

समुद्रयापी बन्दी च तैलिक कूटकारक.।।iii – 138।।

अर्थात् घर मे आग लगाने वाला, विष देने वाला– तेल पेरने वाला व झूठा गवाही देने वाले को छोड़ देना चाहिए। इससे इनकी सामाजिक स्थिति का पता चलता है। मनुस्मृति मे तिसी का तेल, सरसो का तेल और अन्य तेलों का वर्णन बहुधा मिलता है। परन्तु तेल बनाने की तकनीकी का ज्ञान नही होता है। दिव्य व दान मे तेल की चक्की का उल्लेख अवश्य मिलता है। मनु ने 'आयल केक' का सन्दर्भ दिया है जिससे तेल पेरने की कला का पता चलता है।

नमक बनाने वाले :

नमक हर घर व हर व्यक्ति के लिए आवश्यक वस्तु के रूप में उपयोग मे लाया जाता था। इस काल में बहुत से कारीगर नमक बनाने की कला मे लगे हुए थे। मनु ने नमक के संदर्भ में अनेक उदाहरण प्रस्तुत किया है[362]।

चीनी बनाने वाले :

मनु ने तत्कालीन व्यवसायो में इस व्यवसाय की प्रचुरता के बारे में भी उल्लिखित किया है जिससे इस व्यवसाय की महत्ता का प्रतिपादन होता है[363]।

सुगन्धित पदार्थ बनाने वाले :

मनु के विधि ग्रन्थ में सुगन्धित पदार्थों का समुचित उल्लेख मिलता है। इसमें काफी कारीगर लगे हुए थे जो इसकी महत्ता को प्रदर्शित करते है[364]।

परीक्षित· स्त्रियच्चैनं व्यजनोदक धूपनैः।

वेषा भरण शुशुद्धा स्पृशेयु. सुसमाहिता।।vii-219।।

अर्थात स्त्रियाँ चामर आदि से हवा करने, स्नान तथा पीने के लिए पानी देने और सुगन्धित धूप आदि करने से राजा की सेवा करे। इसी प्रकार आपत्तिकाल मे ब्राह्मण व क्षत्रिय को गन्ध से युक्त पदार्थ न बेचने के लिए कहा है अर्थात् यह वैश्यों व शूद्रो का ही कार्य था।

अपं शस्त्र विषं मांसं सोमं गन्धांश्च सर्वशः।

क्षीर श्रौदं दधि घृतं तैल मधु गुडं कुशान।।x-88।।

शराब बनाने वाले :

मनुस्मृति में तीन प्रकार के शराब का उल्लेख मिलता है मनुस्मृति के 11वे अध्याय में कहा गया है कि–

यक्षरक्षः पिशाचानं मद्य मांसं सुरासवम्।

तद्ब्राह्मणेन मनतव्यं देवानां रनता ।।xi-195।।

मद्य, मास, सुरा और आसव ये चारों यक्ष राक्षसों तथा पिचाशों के अन्न हैं, अतएव देवताओं के हाविष्य खाने वाले ब्राह्मणों को उनका भोजन (पान) नहीं करना चाहिए। इस प्रकार मदिरा की निन्दा की गयी है। मदिरा के प्रकार का भी वर्णन मिलता है– 1. गौडी 2. पैष्टी 3 माध्वी अर्थात क्रमशः गुड़, आटे और महुए के फल

से बनी हुई तीन प्रकार की सुरा (मदिरा) होती है जिस प्रकार की सभी है, इस कारण द्विजोन्तमों को उसका पान नही करना चाहिए।

रसायन व दवा बनाने वाले :

मनु स्मृति मे औषधियो का उल्लेख हुआ है[366]–

सीता द्रव्या पहरणे शस्त्राण वा भौषचस्य च।

काल मासाद्य कार्य च राजा दण्ड प्रकल्पयेत्।।ix-293।।

राजा खेती के साधन हल, कुदाल, तलवार आदि शस्त्र और दवा को चुराने पर चुरायी गयी वस्तुओ की समयोपयोगिता का विचार कर तदनुसार दण्ड विधान करे। मनु के अनुसार बहुत से लोग मदिरा बनाने की कला में निपुण थे। चिकित्सा करना ब्राह्मणों के लिए वर्जित था यह अम्बष्टों का कार्य माना जाता था आपत्तिकाल मे ब्राह्मण व क्षत्रिय को दवा न बेचने के लिए मनु ने कहा है–

सर्व च तान्तयं रक्तं शाल क्षौमा विक्रामि च।

अपि चेत्स्यु रक्तानि फल फूलें तथौषधीः।।x-87।।

इस प्रकार औषधि का कार्य सभी वर्गों में सम्मान का पात्र नहीं था बल्कि यह नीचे के दोनो वर्णों के लिए ही था।

टोकरी बनाने वाले :

टोकरी बनाने के व्यवसाय मे बहुत अधिक लोग लगे हुए थे। यह बॉस व केन के द्वारा बनाई जाती थी। इसके लिए 'वेवकारा[367]' शब्द का प्रयोग किया गया है।

सूत कातने वाले :

इस काल में सूत का व्यवसाय भी काफी अच्छा था[368]। सूत, ऊनी, रेशमी, व सूती होते थे जिससे विभिन्न प्रकार के वस्तु बनाये जाते थे।

शख बनाने वाले सिंग व हड्डी का उपकरण बनाने वाले :

मनुस्मृति मे शख बनाने वाले, हड्डी की वस्तुएं बनाने वालों का अच्छा व्यवसाय था। मनुस्मृति के पाचवे अध्याय मे इसका वर्णन आया है कि[369] शख, सीग, हड्डी और दॉत से बने पदार्थों (कघी, कलम, बटन, चाकू के वेट एव दूसरे खिलौनो आदि उक्त शख, सीग, हाथी आदि की हड्डियों एवं हाथी दंतो से बने पदार्थों) की शुद्धि क्षौभ वस्त्रों के समान गो–मूत्र से या जल से शुद्धि विषय को जानने वालो को करनी चाहिए। यह व्यवसाय पश्चिमी व उत्तरी भारत में काफी उन्नति पर था।

वाद्य यन्त्रो को बनाने वाले :

यह भी महत्वपूर्ण व्यवसाय था। 'वेनास' एक महत्वपूर्ण जाति थी जो नाटक करती थी व विभिन्न संगीतों के लिए वाद्य यन्त्रो को बनाती थी[370]।

धातु की वस्तुए बनाने वाले :

मनुस्मृति में मूल्यवान धातुएँ (ताजासनम) कुफ्या, और धातु के अयस्को का उल्लेख किया गया है जो जमीन के अन्दर गढे हुए थे। मनु के पूर्व बुद्ध के समय आठ धातु, सोना, चॉदी, लोहा, पीतल, तॉबा, टीन, सीसा और मूल्यवान पत्थर महत्वपूर्ण धातुएँ मूल्यवान थीं। इस काल मे धातुओं को गलाने की कला से लोग परिचित थे तथा उन्हें, अम्ल व आग से शुद्ध करते थे। इस प्रकार धातु की विभिन्न वस्तुएं बनाने का काम महत्वपूर्ण था[371]।

सुनार :

मनुस्मृति में मनु ने लगभग पैतीस से लेकर चालीस पैराग्राफ मे सुनारों के कामो के बारे मे या सोने के बारे मे उल्लेख किया है एव सभी शिल्पकारो मे सुनार[372] को मनु ने अलग से हर जगह कोड किया है–

कर्मारस्य निषादस्य रगावतारकस्य च।

सुवर्ण कर्तुवैणस्य शस्त्र विक्रयिणस्तया।।1v-215।।

अर्थात लोहार, मल्लाह, रंगसाज, सोनार, बॅसफोर और शस्त्र को बेचने वाला, इनके अन्न को न खावें। समाज मे सुनारो की आर्थिक स्थित तो ठीक थी परन्तु उनकी सामाजिक स्थिति ऊपर के दो वर्णों के सापेक्ष ठीक नहीं थी।

आभूषण बनाने वाले:

इस काल मे गहने सोने के अलावा कीमती पत्थरों के भी बनाये जाते थे। विभिन्न प्रकार के गहनों का निर्माण होता था जिसे समाज के लोग किसी शुभ अवसरों पर पहना करते थे[373]।

अन्य धातु का काम करने वाले– सोने व चादी के अलावा मनु ने पीतल व कॉसा की बनी वस्तुओ का वर्णन किया[374] है। तॉबे की बनी वस्तुओं का भिन्न–भिन्न नाम रखा गया था[375]। टीना, शीशा, आदि की वस्तुओं के निर्माण मे अनेक शिल्पकार लगे हुए थे।

लोहे की वस्तुए बनाने वाला :

पेरिप्लस से पता चलता है कि प्राचीन काल से ही भारतीय लौह व इस्पात की वस्तुएँ बनाते थे। मनु के काल में लोहे की वस्तुएं विशेषकर कृषि कार्य हेतु, शस्त्र,

आभूषण आदि बनाये जाते थे। तक्षशिला व पश्चिमी भारत लोहे की वस्तुओ विशेषकर कृषि के काम मे आने वाली, कुल्हाडी, हल, व घरेलू वस्तुएँ, चाकू, हुक्स, कैंची आदि बनायी जाती थी।

शस्त्र निर्माता :

मनु के काल में शस्त्र निर्माण भी उन्नति पर था[376]। शस्त्रो मे, तीर, भाले, जेवेलिन आदि बनाये जाते थे। पर इन शस्त्र निर्माताओं की भले ही आर्थिक स्थिति ठीक रही पर सामाजिक स्थिति ठीक नही थी।

धनुः शरावों कर्ताच यश्चग्रेदिधि पतिः।

मित्रध्रउघूत्मृतिश्च पुत्रा चार्यस्त चैव च।।iii-160।।

अर्थात धनुष और बाण को बनाने वाले को छोड देना चाहिए। मनु ने चतुर्थ अध्याय मे कहा है कि–लोहार, मल्लाह, रंगसाज, सोनार, वॅसफोर और शस्त्र को बेचने वाला, इनके अन्न को न खावें।

इस प्रकार मनुस्मृति में शस्त्र निर्माताओ को अन्य ऊपर के दो वर्णों की तरह समाज में सम्मान नहीं मिला हुआ था।

इस काल में शिल्पियों की आर्थिक स्थित अपने के पूर्ववर्ती कालों की अपेक्षा अधिक अच्छी थी व्यवसाय प्रायः नीचे के दोनों वर्णों के लोग ही करते थे और ऊपर के दोनो वर्णों को आपत्ति काल में ही करने की छूट थी। वर्ण संकर जातियो ने भी इस काल मे आकर शिल्पियों का कार्य अपना लिया था–

शिल्पेन व्यवहारिक, शूद्रा पत्यैश्य केवलै।

गोमिरश्वैश्च यानैश्च कृष्ण रागोप सेवया।। 64

चित्रकारी आदि शिल्पकला से, धन का व्यवहार करने से केवल शुद्र की सन्तान से गौ, घोडा, रथ, हाथी, के खरीदने से राजा की नौकरी से अच्छा कुल भी नष्ट हो जाता है। इससे यह पता चलता है कि समाज मे शिल्प सम्मानित कार्य नही था। इसी प्रकार अध्याय 3 के 158 से 164 अनुच्छेद में शिल्पियो के कार्यों की निन्दा की गयी है परन्तु इनकी आर्थिक स्थिति काफी मजबूत थी क्योंकि आपात काल में चारो वर्णों को भी यह कार्य करने के लिए छूट थी। प्राचीन भारत के इतिहास मे यह काल चरम उत्कर्ष का काल साबित हुआ था। इस काल के ग्रन्थो मे हम शिल्पियो के जितने प्रकार पाते है उतने पहले के लेखो मे नही पाते। मौर्य पूर्व काल के दीर्घ निकाय में लगभग चौबीस प्रकार के व्यवसायों का उल्लेख है तो इसी काल के महावस्तु मे राजगीर में रहने वाले 36 प्रकार के व्यवसायियों का उल्लेख है और फिर भी सूची अधूरी है मिलिन्दपन्हों मे तो 75 व्यवसायी गिनाए गये हैं जिनके 60 विविध प्रकार के शिल्पो से सम्बद्ध है। साहित्यिक स्रोतों में तो शिल्पियों को अधिकतर नगरो से जोडा गया है किन्तु कुछ उत्खननो से प्रकट होता है कि वे गांवों में भी बसते थे। तेलांगना स्थित करीम नगर के एक गांव मे बढई, लोहार सुनार कुम्हार, आदि अलग–अलग टोलो में रहते थे तथा कृषि मजदूर तथा अन्य मजदूर एक दूसरे छोर पर बसते थे।

आठ शिल्पी सोना, चॉदी, सीसा, टीन तॉबा, पीतल, लोहा और रत्न के काम करते थे। पीतल, जस्ते, ऐटीमनी और लाल आर्सेनिक के कई भेदों का उल्लेख है। इससे खान और धातु के कौशल में भारी प्रगति और विशेषीकरण का पता चलता है लोहा बनाने के तकनीकी ज्ञान में भारी प्रगति हुई। अनेक उत्खनन स्थलों पर कुषाण और सातवाहनकालीन स्तरो में लौह शिल्प की वस्तुएँ अधिकाधिक संख्या में मिली है। परन्तु इस विषय में आन्ध्र प्रदेश का तेलांगाना क्षेत्र सबसे अधिक समृद्ध प्रतीत होता है। इस क्षेत्र के करीम नगर और नाल गोडा जिलो में हथियारों के अलावा तराजू की

डडी, मूठ वाले फावडे और कुल्हाडियॉ, हॅसियॉ, फाल उस्तरा और करछुल आदि लोहे की वस्तुएँ मिली है छूरी–काटे और इस्पात का निर्यात पश्चिमी एशिया मे किया जाता था। शिल्पो के विकास के साथ सिक्कों का प्रचलन बढा। साथ ही शिल्पी लोग आपस मे सगठित हुए जिन्हे श्रेणी कहा जाता था।

संदर्भ ग्रन्थ

1 ऋग्वेद, 10 34 13

2 मज्झिमनिकाय, 197–99

3 नाना क्रिया कुषेत्रर्थ· नावश्यम् कृषिर्विलेखने एव वर्तते तर्हि।

प्रति विधानेअपि वर्तते यद् असौभक्त–बीजबलिबधै्

प्रतिविधान करति स कृषि–अर्थः।।

पतजलि का महाभाष्य 3.1 26.2 33

4. तैत्तिरीय संहिता 7.1.1.7 · तुलनीय व ध.सू., 2.19 महाभारत 12.60 13–20, अर्थ, 3.70, मनुस्मृति 1 90,

5. सुत्तनिपात्त 1.4, 1.171, जातक 2 181, तुलनीय देखिये बुद्धप्रकाश, स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन पृष्ठ 181, ए एन वोस, सोशल एण्ड रूरल इकोनामी आफ नार्दन इण्डिया, प्रथम भाग, पृष्ठ 35.

6 सोमदत्त जातक 211, उग्रजातक 354.

7. सालिकेदार जातक, जिल्द4, संख्या 484, पृष्ठ 175.

8 वर्लिगम, बुद्धिस्ट लीजेण्ड्स, जिल्द 29, भाग 2, पृष्ठ 343.

9. सोननन्दजातक,जिल्द 5, संख्या 532, पृष्ठ 165.

10. कामजातक जिल्द 4, संख्या 467,पृष्ठ 104

11 सोमदत्त जातक जिल्द 2, संख्या 211, पृष्ठ 115–16

12. जैन पी सी. लेवर इन एशिएण्ट इण्डिया पृष्ठ 39.

13 अर्थ0 2 और 1.

14 मरवादेव जातक, जिल्द 1 सख्या 9, पृष्ठ 31

15 नीमीजातक, जिल्द 6, सख्या 541, पृष्ठ 53

16 महावग्ग 6 34

17 राय, जयमल, दि रूरल अरबन इकोनामी एण्ड सोशल चेंजेज इन एशिएण्ट इण्डिया, पृष्ठ 325–26–27.

18 जातक जिल्द 1 संख्या 83, पृष्ठ 210, संख्या 121, पृष्ठ 267, जिल्द 2 सख्या 267, पृष्ठ 235

19 भेरी जातक, जिल्द 1, संख्या 103, पृष्ठ, 245

20 महाउमग्ग जातक, जिल्द, 6 संख्या 546, पृष्ठ 238.

21 सालिकेदारजातक, जिल्द 4, संख्या 484.

22 जातक, 4 370.

23 सन्त–पत्त जातक, जिल्द 5 सख्या 532 पृष्ठ 165.

24. जैन. जे सी. लाइफ इन एशिएण्ट इण्डिया डेपिस्टेड इन दि जैन कैनन्स पृष्ठ 14.

25 भट्टाचार्या एस.सी. सम आसपेक्ट्स आफ इण्डियन सोसाइटी पृष्ठ 149.

26 नीमी जातक, जिल्द 6 संख्या 541.

27. मखादेव जातक, जिल्द 1 संख्या 9.

28. मनुस्मृति 7.119, शान्तिपर्व 87.6–7.

29 अर्थ0 2 1 7.

30 अर्थ0 5 3

31 डा0 राय जे एम पूर्वाधृत पृष्ठ, 325

32 देखिए इसी मे, पृष्ठ 99.

33 सोमदत्त जातक जिल्द 2 सख्या 211, पृष्ठ 115–16

34 मनुस्मृति, 9 44, मिलिन्दपन्हो 9 5 15

35 अर्थ 2 1

36 अर्थ0, वही

37 अर्थ0 1 11.

38 अर्थ. 2.4

39 वही, 3.10.

40 भट्टाचार्या, एस. सी., लैंडसिस्टम एज रिफलेक्टेड इन कौटिल्याज अर्थशास्त्र, पृष्ठ 92–93.

41 जातक 1 सख्या 103.

42. जातक जिल्द 2. संख्या 257.

43. पुत्तभट्ट जातक 2. संख्या 223.

44 महाकपि जातक जिल्द 5 संख्या 516.

45 जातक 5, सख्या 526

46. अर्थ0 3.13.

47 वही 2 24

48 वही

49 शान्तिपर्व 60–25

50 अर्थ0 2 24

51 वही मनु0 4 253, शर्मा, शूद्रो का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ 214

52 तक्कल जातक, जातक जिल्द 4, सख्या 446

53 बाधनगर जातक, जातक 2 सख्या 201

54 वर्लिगम, बुद्धिस्ट इण्डिया, जिल्द 29, भाग 2, पृष्ठ 15

55 वही, जिल्द 30, भाग 3 पृष्ठ 260.

56 महावग्ग 6 34

57. सालिकेदारजातक, जातक 4 संख्या 484

58 एकान्तेतृष्णीमासीन उच्यते पजभिर्हलै.।

कृषतीति तत्रभवितव्यं पंचर्भिहलैः कर्षयतीति।।

महाभाष्य 2.33.

59 जैन0 पी0 सी0, लेबर इन एशिएण्ट इण्डिया, पृष्ठ 150.

60 जातक 4.276.

61 विनयपिटक 4.262.

62. थेरिगाथा 55.

63. बर्लिगम,ओप0सीट0 जिल्द 29, भाग 2. पृष्ठ 67.

64 जातक 6 117, 3 163

65 जातक 4 167.

66 अर्थ0 2 224.

67 अर्थ0 3 13

68 दाप्यस्तु दशम भाग वाणिज्यपशुसस्यत·।

अनिश्चित्य भृति यस्तु कारयेत्स महीक्षिता।।

याज्ञ0 स्मृति 2.194

69 जातक 1,475, 2 235

70 जातक 1 111 475, 3.446

71. सभापर्व 5 21

72. रामायण 2.100 33.

73 अर्थ0 2 14.

74 मनुस्मृति 7 61, अर्थ0, 1.15

75. जातक सख्या 528.

76. मेहता, आर0 एन0, प्रि बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ 104.

77. न शूद्रराज्येनिवसेन्नाधार्मिकजनावृते।

न पाषण्डिगणक्रान्त नोपसृण्टेडन्त्यजैन्नभि ।।

मनुस्मृति 4.61.

78. शर्मा, आर.एस.प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं सस्थाएं, पृष्ठ 167.

79 शस्त्र द्विजातिभिर्ग्राह्य धर्मो यत्रोपरुध्यते।

द्विजातीना व वर्णानां विलवे कालकारिते।।

मनुस्मृति 8 348.

80 अर्थ0 9 2

81 ला वी सी इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड इन अरली टेक्सट्स आफ वुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ 155

82 जातक 5 पृष्ठ 127

83 आ ध सू., 2 10 26.4

84 अर्थ0 1 9

85 हापकिंस, पोजीशन आफ दि रूलिंग क्लास इन दि एपिक

86 शान्तिपर्व 85 7–10

87. देखिये शर्मा आर0 एस0, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं पृष्ठ 171

88. ला.वी सी. पूर्वोधृत पृष्ठ 159

89 शर्मा आर.एस.भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं पृष्ठ 210

90. ला.वी सी. पूर्वोधृत, पृष्ठ 159

91. शान्तिपर्व 86.26–27,मनुस्मृति 7.63

92 ला.वी.सी. पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 155

93 मनुस्मृति 20, याज्ञ0 स्मृति 2.3

94 अर्थ 5 3

95 अर्थ0 1.8

96 अल्टेकर, प्राचीन भारतीय शासनपद्धति, पृष्ठ 121

97 मौलाछास्त्रविद· शूरोल्लब्धलक्षन्कुलोद्वान्।

सचिवान्सप्त चाण्टो वा प्रकुर्वीत परीक्षितान।।

मनुस्मृति 7 54

98 शान्तिपर्व 12 85

99 अर्थ0 1 5

100 अर्थ0 8 7, 9.6

101 जातक सख्या 257

102 रामायण 6.12

103. अर्थ0 1.6

104 दिव्यावदान पृष्ठ 432

105. देखिए अल्टेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ 128

106 शिलालेख 6.

107. अर्थ0 1 5

108. जातक जिल्द 2, पृष्ठ 51

109 जातक जिल्द 3, पृष्ठ 157

110 शर्मा0 आर0 एस0, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एव संस्थाएं, पृष्ठ 206

111 वही, पृष्ठ 208

112 सेलेक्ट इसक्रिप्सन्स, 2सख्या 83 पक्ति 2 5, सख्या 84,पक्ति 1.

113 ल्यूडर्स लिस्ट सख्या 1105

114 वही सख्या 994

115 क्लेक्डेड वर्क्स आफ आर0 जी भण्डारकर 2, 242

116 जातक जिल्द 3 पृष्ठ 333

117 जातक जिल्द 3 पृष्ठ 167

118 ला.वी सी., पूर्वोधृत, पृष्ठ 157

119. जातक 1 पृष्ठ 437

120. परमाथ्यजोतिक 2 पृष्ठ 580

121. जातक जिल्द 2, पृष्ठ 186

122 अर्थ0 1.10

123. शान्तिपर्व 74 1

124. अल्तेकर प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ 123

125. आ0 श्रो0 सू0 20.2–12, 3 1.3, वौ0 श्रौ0 सू0 18.4

126. अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति पृष्ठ 123

127. फिक. आर. दि सोशल आरगनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन वुद्धाज टाइम, पृष्ठ 164

128. जातक 2 पृष्ठ 376, 4 पृष्ठ 270, 5 पृष्ठ 127

129 जातक 1 पृष्ठ 289, 2 पृष्ठ 282, 3 पृष्ठ 31

130 जातक 3 पृष्ठ 513

131 जातक 2. पृष्ठ 187

132. अर्थ0 1 9

133 अर्थ0 2 35

134 शास्त्री, नन्द– मौर्य युगीन भारत पृष्ठ 200–201

135 अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ 142

136. याज्ञ0 स्मृति 1.332

137 अर्थ0 2 5

138 मालास्कर, डिक्शनरी आफ दि पाली पेपर नेमेक्सर, पृष्ठ 78

139 अर्थ0 2.33

140 जगलिगुड अभिलेख ए0इ0 चर्तुदश 155

141. अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति पृष्ठ 193

142. याजदानी, दकन का इतिहास पृष्ठ 125

143 वही पृष्ठ 125 संदर्भ संख्या 8

144. ल्यूडर्स लिस्ट संख्या 209

145. वही संख्या 1037, 1045

146. झा0 डी0 एन0, मौर्योत्तर तथा गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था पृ0 156

147. अल्तेकर विलेज कम्यूनिटीज इन वेस्टर्न इण्डिया पृश्ठ 12–13

148. झा, डी0एन0, मौर्योत्तर तथा गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था पृष्ठ 156

149 अर्थ0 2.35

150 याज्ञ0 स्मृति 2.173

151 जातक 1.पृष्ठ 354, मनुस्मृति 7 118, अर्थ0 3 10

152 ल्यूडर्स लिस्ट सं0 48–69 (अ), 1333

153 जातक जिल्द 1 पृष्ठ 483

154 झा, डी एन पूर्वोधृत, पृष्ठ 155

155. शान्तिपर्व, 87 25 8

156 शान्तिपर्व 87.10

157 अर्थ0 2 36

158 देखिये, विद्यालकार सत्यकेतु, प्राचीन भारत की शासन संस्थांए और राजनीतिक विचार पृष्ठ 223

159 जातक 2 पृ0 366

160 जातक 2 पृष्ठ 367

161 अल्तेकर, पूर्वोधृत, पृष्ठ 159

162 जै0 ड्यू0 मा0 गे0 47, पृष्ठ 466

163 अल्तेकर पूर्वोधृत पृष्ठ 159

164. स्तम्भलेख 5.

165. विद्यालकार, एस0 प्राचीन भारत की शासन सस्थाए और राजनीतिक विचार पृष्ठ 117

166 वही पृष्ठ 95.

167 अर्थ 5 3, देखिये डा0 काणे, धर्मशास्त्रो का इतिहास पृष्ठ 648

168 अर्थ0 2 1

169 यानि राज प्रदेयानि प्रत्यह ग्रामवासिभि।

अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्त्रान्यवाप्नुयात्।।

दशीकुलं तु भुजीत विशी पंचकुलानि च।

ग्राम ग्रामशताध्यक्षः सहस्त्राधिपतिः पुरम्।।

मनुस्मृति 7.118.19

170 अर्थ0 4.1

171 वही, 10 1

172 वही 3 1

173 वही, 2.12

174. वही, 2 1

175. वहीं, 2.3

176. वही, 1 18

177. वही, 5.6.

178. विद्यालंकार, एस. पूर्वोधृत, पृष्ठ 117

179 जैनग्रथपन्नवणा 1 61

180 दीघनिकाय 2.50

181 महावस्तु 3 पृष्ठ 442

182 अगविज्जा पृष्ठ 71 160 आदि रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग 83. श्लोक 12 15

183 देखिये भट्टाचार्या, एस0सी0 साउथ एशियनरिव्यू 1973

184 वही

185 मैके, फरदार इक्सवेशन एट मोहनजोदडो, पृष्ठ 441–43, 591

186 अर्थ0 2.23

187 महाभारत, 13.111 104–6

188. अंगविज्जा, पृष्ठ 163–64, 221, 230–32

189. मनुस्मृति 8.397, याज्ञ0 स्मृति 2.179–80

190 अर्थ0 2.11

191 हेरोडोटस 3 10.6

192 प्लिनी, हिस्ट्री आफ पलाट्स 4.8–10

193 एरियन 13.38–40

194 जातक 6.200

195. अर्थ0 2.11

196. वही

197. महाभारत सभापर्व 28

198 मनुस्मृति 5.120

199 अर्थ0 2 11

200 देखिये अद्या, अरली इण्डियन इकोनामिक्स पृष्ठ 72

201 अर्थ0 2.23

202 अगविज्जा पृष्ठ 160

203 जातक 2 18, 4.207, 5 159, 6 426

204 अलिनासित जातक, जिल्द 2 सख्या 156

205 महाउमग्ग जातक, जिल्द 6 सख्या 546

206 मिलिन्दपन्हो पृष्ठ 413

207 अर्थ0 2 17

208. मेगस्थनीज, भारत वर्णन पृष्ठ 49

209 अष्टाध्यायी 5.4 95

210 जातक, जिल्द 4 संख्या 466

211. एनुअल रिपोर्ट आफ आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया 1912–13, पृष्ठ 53

212 अर्थ0 2.17

213 वैदिक इण्डेक्स 2 पृष्ठ 31–32

214. आद्या, अरली इण्डियन इकोनामिक्स पृष्ठ 480

215. मिलिन्दपन्हों 1.1.2

216 अर्थ 2.12

217 वही

218. देखिये, आद्या, अरली इण्डियन इकोनामिक्स पृष्ठ 49

219 वही

220 मार्शल, तक्षशिला, खण्ड 2 पृष्ठ 103

221 नियोगी,कल्चर इनइशिएण्ट इण्डिया पृष्ठ 13

222 आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट 1902, प्रि हिस्टारिकल एण्टिक्वीटिज इन तिन्नेवेली पृष्ठ 111–40

223. नियोगी, कापर इन एशिण्ट इण्डिया पृष्ठ 13–20

224 मार्शल, तक्षशिला 2, पृष्ठ 564

225 आद्या अरली इण्डियन इकोनामिक्स पृष्ठ 54

226 पेरिप्लस, पृष्ठ 28.49.56

227. चरक संहिता 3.4

228. मनुस्मृति 5.26

229. हेरोडोटस 3.94–98

230 स्टैबो, 15.1.69

231. ऋग्वेद 1.2.3, 1.121.9, 6.53 9, 6.75.11, 10.27.20

232. जातक 5.45

233 वर्लिगम, वुद्धिस्ट लीजेण्ड्स,28.1 पृष्ठ 274

234. अष्टाध्यायी, 5.1.15

235. जातक, 2.153, 3 79, 3.116, 6 431

236 छदन्तजातक, जिल्द 5.514

237 महावग्ग, 5.2 विनय टेक्स्ट् भाग 2

238. एरियन–इण्डिका–16

239. महाभाष्य, 5 12

240 मनुस्मृति, 4.218

241 अर्थ0 2 11

242 दास, एस.के. इकोनामिक हिस्ट्री आफ एशिएट इण्डिया पृष्ठ 155

243. अर्थ0 2.25

244 महाभाष्य, 5.2.112

245. अर्थशास्त्र, 2.25

246 वही

247 मेगस्थनीज, पृष्ठ 33

248. अर्थशास्त्र 2.25

249 जातक 2 पृष्ठ 18, 3 पृष्ठ 281, 4 पृष्ठ 159, 206.

250. घोषाल यू0न0 ओप0 सीट0 पृष्ठ 172

251. पाणिनि की व्याकरण वृत्ति 6.2.63.

252. बौ0 श्रो0 सू0 15.14, आश्वालायन गृह्य सू0 3.12.11

253. जैनग्रथ आवश्यक चूर्णि 282

254 अगविज्जा, पृष्ठ 160

255 सिलवन्नाग जातक, जिल्द 1 संख्या 72

256 देखिये डा0 जयमलराय, रूरल अरबन इकोनामी एण्ड सोशल चेन्जेज इन एशिएण्ट इण्डिया पृष्ठ 196

257 अर्थशास्त्र 2 12

258 डा0 राय, जयमल, पूर्वोदूत पृष्ठ 115

259 कासवजातक, जिल्द 2, सख्या 221

260 सीलवन्नागजातक 1.320

261 रीजडेविड्स, बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ 91, कासवजातक, 2 पृष्ठ 197.

262. जैन जे0सी0 लाइफ इन एंशिएण्ट इण्डिया एज डंपिक्टेड इन जैन कैनन्स, पृष्ठ 100

263 रामायण 2.10.14–15

264. रामायण 5.10.2

265 अर्थ0 2 24

266 डा0 काणे, पूर्वोधृत, पृष्ठ 143

267 का0 श्रौ0 सू0 1.2.28

268 ऋग्वेद 10.98.7.देखिये काणे, पूर्वोधृत पृष्ठ 144

269. रामायण,बालकाण्ड 59.13–14

270. शतपथ ब्राह्मण 3.2.1.39, 13.4.1.3

271 वैदिक इण्डेक्स 1 पृष्ठ 113 14

272 वही, 19.4, व0ध0 सू0 9 12 14

273 मनु 7 78

274. याज्ञ0 स्मृति 1 312

275 गौध0 सू0 11.17

276 ऐ0 ब्रा0 8 9,पंचविंश ब्राह्मण 11 11 1

277 ऋग्वेद4 50 7.9

278 बौ0ध0 सू01.10 18.7–8

279 शान्तिपर्व 72.1.5

280. याज्ञ0स्मृति 1.313.

281 अर्थ0 1 9

282. वही 1 10

283. वही 10.3

284. सुसीम जातक देखिये अल्तेकर, पूर्वोधृत पृष्ठ 123.

285. देखिये अल्टेकर, पूर्वोधृत पृष्ठ 123.

286 आ0 श्रौ0 सू0 20.2–12, 3.1.3,बौ0 श्रौ0सू0 18.4

287 मनु0 7.58.

288. ऐ0 ब्रा0 8.25.

289 याज्ञ0 स्मृति 1.312.

290 गौ0 ध0सू0 11 13 14

291 श्रौ0 सू0 22.5 11

292 महाभारत 2 30 32–6.

293 प्रो0 पाण्डेय, जी0सी0, बौद्धधर्म के विकास का इतिहास पृष्ठ 9

294 काणे, पूवोधृत जिल्द 2 भाग 2 पृष्ठ 976

295. उपाध्याय, ब्राह्मणाज इन एशिएण्ट इण्डिया पृष्ठ 137–8

296 मनु0 2–176.

297. वही, 4 39

298 वही 8 87

299 वही 3 152.

300 नीलकण्ठ महाभारत की टीका बीई 12.76.6

301 क्लैसिकल इंडिया संपा0 डब्ल्यू0 एम0 मेकनील एण्ड जे0 डब्ल्यू0 सेललर पृष्ठ 136

302 मनुस्मृति का X-.43–44

303 वही X-99, 100

304 लूडर्स लिस्ट सं. 53, 54, 76, 95

305 वही स. 32, 53–54, 345

306 धर्मकोष 3 भाग तृतीय पृ0 1927

307 महाभाष्य प्रथम पृष्ठ 19

308 लूडर्स लिस्ट स0 346

309 महावस्तु द्वितीय पृष्ठ 463–78

310 वही तृतीय पृ. 442 एव आगे

311 वही द्वितीय पृ 463–78

312 इण्डिया कल्चर, कलकत्ता 14 पृ0 31–32

313 पतजलि ऑन पाणिनीज ग्रामर

314 महावस्तु तृतीय पृष्ठ 442

315 वही

316 मिलिन्द पृष्ठ 331

317 पन्नवणा पृष्ठ 61

318 दीघनिकाय द्वितीय 50

319 मिलिन्द पृ. 331

320 पन्नवणा प्रथम 61

321 मिलिन्द पृ. 331

322 पतंजलि आन पाणिनीज ग्रामर प्रथम 4 54

323 पतजलि आन पाणिनीज ग्रामर तृतीय प्रथम 26

324 फार डिटेल्स सी द शार्टरआक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी आन हिस्टोरिकल प्रिंसिपल वाल्यूम प्रथम एडीसन सी0टी0 ओनियन्स।

325 मनुस्मृति 3–64, 4–219, 5–116–129, 7–75 138 8–6562 9–239 265
10–99–100–129 11–64

326 मनुस्मृति 10–100

327 आर एम शर्मा लाइट आन इयर्ली इन्डीयन सोसायटी एण्ड इकोनामी पृ 74

328 मनुस्मृति 10–115

329 मनुस्मृति 10–116

330 मनुस्मृति 8–397

331 मनु0 द्वितीय– 41. 44

332 मनु0 –4–66

333 मनु0 पॉच– 120

334 मनु0 8–326

335 मनु0– 10–87

336 मनु0 2.–41,

337 मनु0 5 –120

338. जी0 एल0 अध्या0 इयर्ली इण्डिया इकोनामिक्स पृष्ठ 71

339 मनु. V- 121

340. मनु0 vii-222

341 मनु viii–397

342. शर्मा (एल0 ई0 आई0 एस0 ई0) पृष्ठ 75

343 मनु0 iv- 24, 66, 188, 189

344 मनु iv – 66, 188, 189

345 मनु0 v – 120

346 मनु0 vii–222

347 मनु0 iv –215

348 मनु0 iv –216

349 मनु0 iv–219

350. मनु0 iv –221

351 मनु0 iv –46, v –117, vii – 220, 222, viii –285, xi –202

352 मनु0 viii –285

353 मनु0 xi –166,

354 मनु0 iv –218

355 मनु0 x–36

356. आर0 एस0 शर्मा, शूद्रो का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ 206

357 मनु0 iii –163

358 मनु0 viii –50

359. मनु0 v –111, vii –132, viii –100, xi –168

360 मनु0 iv –65, vii –122, 132, viii 289, 327

361. मनु0 iii –158

362 मनु0 viii –327

363 मनु0 viii –326, xi 167

364 मनु0 vii –219, x –88, xi –169

365 मनु0 xi –94, 95

366 मनु0 viii –326, ix –293, xi –169

367 मनु0 v –119, 117, vii –132, viii –327

368 मनु0 iv –169,

369 मनु0 v –121

370 मनु0 iv –64, vii –225

371. मनु0 v –111, vii –96, viii –38, 39 iv –71, xi –64, 67

372. मनु0 iv –215, 218, ix –292, xii –61

373 मनु0 v –111, vii –218, viii –100, xi –168, xii –61

374. मनु0 v –114

375. मनु0 viii –136

376. मनु0 iii –64, 160

अध्याय–3

सामाजिक–आर्थिक स्वरूप

सामाजिक व आर्थिक स्वरूप

मनुस्मृति जिसका काल 200 ई0 पू0 से 200 ई0 तक माना जाता है। प्राचीन भारतीय सामाजिक–आर्थिक दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण है। इसी काल मे प्राचीन भारतीय सामाजिक–आर्थिक जीवन के मूल आधार और विशेषताएं अपने रूप परिग्रहण किये। एक ओर मौर्य काल का पतन और दूसरी ओर विदेशियों का भारत मे प्रवेश से लडखडाई सामाजिक व्यवस्था का फिर से नये स्वरूप मे व्यवस्थित होकर आगे बढना अपने आप में अद्वितीय है। जन से जनपद, जनपद से महाजनपदों का उत्कर्ष हो चुका था। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था धीरे–धीरे जाति व्यवस्था की तरफ अग्रसर हो रही थी। यद्यपि वैदिक काल मे व्यापार एव उद्योग के प्रति कुछ अनादर की भावना परिलक्षित होती है– पणियो को सन्देह एवं घृणा की दृष्टि से देखा जाता था लेकिन द्वितीय शताब्दी तक आते–आते इस दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन नजर आने लगा। अब उद्योग एवं व्यापार को समाज में महत्वपूर्ण स्थान मिल गया, नगर–सभ्यता के पुनरूत्थान के प्रमाण भी सुस्पष्ट है। आर्थिक जीवन एवं विनिमय व्यवस्था में मुद्रा की भूमिका उत्तरोत्तर महत्वशाली हो रही थी। औद्योगिक और व्यापारिक जीवन श्रेणियो के आधार पर संगठित होने लगे थे। सामाजिक ढांचे के ऊपर इन सभी गम्भीर परिवर्तनो का पडना स्वाभाविक था।

वर्ण –व्यवस्था के सैद्धान्तिक पक्ष ऋग्वेद के पुरूषसूक्त[1] पर आधारित होते हुए भी परवर्ती कालीन साहित्य में समाज व्यवस्था की कुछ अन्य विशेषताओं की व्याख्या उपस्थित करने की प्रवणता मिलती है। इससे यह स्पष्ट है कि विराट पुरूष के चार अगो से चार वर्ण की उत्पत्ति के सरलीकृत सिद्धान्त बहुत से विचारको के दृष्टिकोण मे सामाजिक वास्तविकता को परिभाषित करने में पर्याप्त नहीं लगता था। महर्षि भृगु

ने शिष्य भारद्वाज से कहा कि प्रारभ मे समाज मे केवल एक ही वर्ण था लेकिन आगे चलकर रग के आधार पर यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ,शूद्र चार भागों मे विभाजित हो गया। ब्राह्मणो का रग श्वेत, क्षत्रिय का लोहित, वैश्य का पीत और शूद्र का श्याम[2] । रग की भिन्नता को सिर्फ दैहिक न मानकर इसको गुण के प्रतीक के रूप मे चित्रित करने की प्रवृति भी मिलती है। ब्राह्मण का श्वेत रंग पवित्रता, क्षत्रिय का लोहित (लाल) रग बल वैश्य का पीत (पीला) रग धन एव जीवनदायक सामग्री और शूद्र का असित (काला) अपवित्रता का प्रतीक माना गया। इस प्रकार पुरुषसूक्त के सिद्धान्त को वर्ण (रग) गत और गुणगत (सत्व, रज, तम) व्याख्या करने का प्रयास स्पष्ट है। गुण के साथ–साथ कही–कहीं कर्म सिद्धान्त को भी जोड दिया गया[3]। इन कथनो में यह व्यक्त करने का प्रयास मिलता है कि रंग ही वर्ण विभाजन का आधार नहीं है, बल्कि वास्तविक आधार गुण और कर्म है, और रंगों पर आधारित ये गुणात्मक अभिव्यक्तियां मनुष्य की त्वचा के रग को नहीं उद्भाषित करती बल्कि उनके कर्म प्रधान को। सर्वप्रथम ब्राह्मण ही समाज मे थे, बाद में अपने कर्तव्यों की विभिन्नता यानि गुण एवं कर्म के कारण कई वर्ण हो गए[4]। सत्य, धर्म, नैतिकता और सदाचरण करने वाले ब्राहमण , काम–भोग प्रेमी , तीक्ष्ण ,कोधी स्वधर्मत्यागी, साहसिक क्षत्रिय, पशुपालन में लिप्त पीत वर्ण वाले वैश्य और अपवित्र, हिंसाप्रिय, कालेरग वाले शूद्र हुए (महाभारत शान्तिपर्व 188 11. 12 13) समाज में विखरे हुए तमाम सारे समुदायो को चातुर्वण्य व्यवस्था के सयोजित करने की प्रवृत्ति भी हमें प्राप्त होती है जैसे महाभारत के शान्तिपर्व मे जनक ने अपने गुरु पराशर से प्रश्न किया कि ब्रह्मा द्वारा सभी को समान बनाने के बावजूद भी उनमें वर्ण –भेद क्यों हुआ ? उत्तर मे पराशर ने स्पष्ट किया कि यद्यपि यह सत्य है कि आरंभ में सभी एक ही वर्ण के थे लेकिन जिस प्रकार भूमि और बीज के आन्तरिक गुण बदल जाने से खेती का रूप भी बदल जाता है, उसी प्रकार मनुष्य के गुण और कर्म बदल जाने से उनका वर्ण भी

परिवर्तित हो जाता है, साथ ही साथ मिश्रित विवाह के आधार पर नवीन अनुलोम एवं प्रतिलोम जातियों की उत्पत्ति के विचार भी प्रस्तुत किये गये हैं। इन सबसे यह स्पष्ट है कि चातुवर्ण्य व्यवस्था के साथ–साथ जाति–व्यवस्था के सिद्धान्त का विकास भी हो रहा था ।

सैद्धान्तिक रूप से समाज में ब्राह्मण की प्रधानता मानी जाती थी । महाभारत में ब्राह्मण को भूमिचर देवता कहा गया[5] । स्मृतियों में यह उल्लिखित है कि देवता लोग ब्राह्मण के मुख से हव्य और पितर लोग कव्य खाते है भूतों में प्राण धारी जीव श्रेष्ठ है प्रणियों में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ है बुद्धिजीवियों में मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है[6] ।

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनाः बुद्धिजीविनः।

बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ।।मनु0 एक–96।।

वेद पढ़ना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान लेना , ये प्रधान रूप से उसके कर्म बतलाये गये हैं जो उसके स्वधर्म के अन्तर्गत आते है[7]। इसके अलावा ब्राह्मण के लिए सुन्दर आचरण और चरित्रबल को कायम रखना भी उसके कर्तव्य माने गये है। यद्यपि दान के संबंध में स्मृतियों में विरोधाभास भी दृष्टिगोचर होता है, एक तरफ दान देना और दान लेना दोनों बातें उसके धर्म की अंग समझी गयी है, वहीं दूसरी और एक अन्य स्थल पर यह भी कहा गया है कि ब्राह्मण के लिए दान लेना वर्जित है क्योंकि इससे उसके तेज का ह्रास होता है[8]। महाभारत में कथित है कि स्वाध्याय और तप रहित ब्राह्मण को दान प्राप्त करने का विधान नहीं है[9] । सिर्फ परिग्रह को सारे ब्राह्मणों के लिए अपनी जीविका बनाना न तो बहुत सम्मान जनक था न आर्थिक दृष्टिकोण से सम्भव ही हो सकता था। इसी कारण सम्भवतः दान लेने के बारे में इस प्रकार के कथन प्राप्त होते है। अतः ब्राह्मणों में विद्वान ब्राह्मण को श्रेष्ठ, विद्वानों में

शास्त्रोक्त कर्तव्य में आस्था रखने वाले श्रेष्ठ तथा इनमे भी शास्त्रोक्त कर्तव्यों के अनुसार आचरण करने वाले श्रेष्ठ है और इनमे भी ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण श्रेष्ठ है, यह कहा गया है[10]।

सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों रूपों में ब्राह्मण को सामाजिक महत्ता प्राप्त थी। राजनैतिक क्षेत्र में भी ब्राह्मण प्रभावशाली वर्ग रहे होंगे और बौद्ध ग्रंथ महावग्ग मे ऐसे ब्राह्मणों का उल्लेख हुआ है जो राजकार्यों से अपने को जोड रखे थे और जिनका सम्बन्ध राजा से था[11]। मंत्रियों में राजपुरोहित का पद महत्वपूर्ण था। पुरोहित की नियुक्ति के लिए कुछ विहित योग्यताएं थीं– सत् की रक्षा करने वाला, असत् का निवारक, विद्वान, बहुश्रुत, धर्मात्मा, मंत्रिविज्ञ व्यक्ति को पुरोहित पद पर आसीन किया जाता था[12]। कौटिल्य के अनुसार उन्नत कुल में उत्पन्न शील तथा सदाचार सम्पन्न, सभी वेदों और व्याकरणों आदि वेदांगों में पारंगत, दैवी विपत्तियों एवं शकुनशास्त्र के विज्ञ, दण्डनीति (राजनीति) शास्त्रों में निपुण और दैवी तथा मानवी आपदाओं को अथर्ववेदोक्त मंत्रों द्वारा हटा देने में कुशल व्यक्ति को ही राज पुरोहित बनाए जैसे शिष्य गुरु को, पुत्र पिता को तथा सेवक स्वामी को मानता है, ठीक उसी प्रकार राजा भी पुरोहित को अपना पूज्य मानकर उसका अनुसरण करें[13]। ब्राह्मणों की राजनीतिक महत्ता पुरोहित के रूप में समाज और राज्य में प्रभावकारी थी[14]।

राज्य के न्याय विभाग में भी ब्राह्मणों का प्रभावशाली स्थान था। न्यायाधीश सामान्य रूप से ब्राह्मण ही हुआ करता था। मनु ने लिखा है कि जब राजा विवादों का निपटारा स्वयं नहीं कर पाता था तो ब्राह्मण की ही नियुक्ति न्यायाधीश के रूप में करता जो अन्य सदस्यों के साथ–साथ न्यायालय के कार्यों को देखता था तथा विवादों के निर्णय करने में सहायक होता था[15]। मनु ने राजा के मंत्रियों में एक ब्राह्मण मंत्री नियुक्त करने का उल्लेख किया है, जो प्रशासन में सहायक होता था।

उसके अनुसार राजा उन मंत्रियों मे से विद्वान, धर्मादियुक्त विशिष्ट एक ब्राह्मण मत्री के साथ बहुगुण से युक्त मंत्री की मंत्रणा करता था। तथा उस पर पूर्ण विश्वास कर सब कार्य सौंप देता था एवं उससे परामर्श और निश्चय कर कार्य आरम्भ करता था[16]। गिरनार लेख में दण्डनायक के रूप में ब्राह्मण का उल्लेख हुआ है[17]।

भारतीय साहित्य में ऐसे तमाम उदाहरण मिलते है जहा ब्राह्मणो ने क्षत्रिय कर्म को अपनाया। ऐतिहासिक काल में पुष्यमित्र शुंग, गौतमी पुत्र शातकर्णि आदि ब्राह्मण अपने अपने क्षात्र–कर्म के लिए प्रसिद्धि–प्राप्त थे। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि अनेक योद्धाओं का उल्लेख महाभारत में मिलता है। परम्पराओं से परशुराम की भी जानकारी ब्राह्मण योद्धा के रूप में होती है। इसके अलावा भारतीय साहित्य में ऐसे अनेक ब्राह्मण–वंश हुए जो राजवंश कहलाए एवं अपनी मर्यादा एवं सत्ता कायम रखने में उन्होंने क्षात्र–कर्म को अपनाया।

जातकों से यह बात स्पष्ट होती है कि ब्राह्मण कभी–कभी हल की मुठिया पकडता था[18]। गौतम ने लिखा है कि ब्राह्मण खेती वाणिज्य भी कर सकता है[19]। मनुस्मृति से यह बात स्पष्ट होती है कि क्षत्रिय कर्म से जीवन–निर्वाह न कर सकने के कारण ब्राह्मण वैश्य के कर्म–कृषि, गोपालन और व्यापार ग्रहण कर सकता था[20]। कृषि कर्म करने वाले ब्राह्मण या जीविका के लिए कृषि के ऊपर निर्भरशील ब्राह्मणों का उल्लेख हमें बौद्ध साहित्यों, महाकाव्यों, सूत्रग्रंथों एवं स्मृतियों में मिलता है। अपने हाथ से स्वयं खेती करने वाले ब्राह्मणों की सामाजिक स्थिति सम्भवतः अच्छी नही रही होगी। इसीलिए गौतम धर्मसूत्र में इस बात के ऊपर जोर दिया गया है कि वह स्वयं कृषि कर्म न करके दूसरे से करवाये[21]। कुछ अन्य साहित्यिक ग्रंथों में भी ब्राह्मणेत्तर वृत्ति करने वाले ब्राह्मणों को शूद्र या संकरवर्ण के समान कहा गया है[22]। यद्यपि जीवन निर्वाह के लिए आपातकाल में ही ब्राह्मणों को व्यापार करने की बात

शास्त्रो मे कही गई है और उसमें कई प्रकार के बन्धनो का भी उल्लेख है फिर भी कृषि, व्यापार उद्योग के साथ जुडे हुए तमाम आर्थिक कार्यों को करने में ब्राह्मणों की भूमिका अन्यवर्णों से कम महत्वपूर्ण नहीं लगती। मनु0 का कथन है कि आपातकाल में ब्राह्मण धन वर्धन के लिए व्यापार कर सकता है[23]। महाभारत मे ब्राह्मणो को कर्मों के आधार पर कई वर्गों में रखा गया है– ब्रह्मसम, देवसम, शुद्रसम, चाण्डालसम, क्षत्रसम, वैश्यसम[24]।

साहित्यिक स्रोतों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि सैद्धान्तिक दृष्टिकोण चाहे जो भी रहा हो पेशे के मामले में ब्राह्मण को कृषि, गोपालन, व्यापार और राजकीय सेवाओ में कार्यरत रहने की स्वतंत्रता थी। यद्यपि स्रोतों में ब्राह्मण के लिए अपने धर्मसंगत जीविकाओं के अतिरिक्त अन्य प्रकार की जीविका से धनोंपार्जन करने की प्रवृत्ति का तिरस्कार किया गया है फिर भी सन्देहातीतरूप से नही कहा जा सकता है कि महत्वपूर्ण राजकीय सेवारत ब्राह्मण या कृषि अथवा वाणिज्य से धनाढ्य ब्राह्मण की वास्तविक सामाजिक प्रतिष्ठा बहुत अच्छी नहीं थी। इस प्रकार के साहित्यिक स्रोत जैसे मनुस्मृति जिनमें वास्तविक सामाजिक जीवन का घनिष्ठतर चित्रण मिलता है, ऐसे स्रोत इसी ओर इंगित करते हैं कि राजनैतिक या आर्थिक प्रभावशाली ब्राह्मण की सामाजिक मर्यादा बहुत अच्छी थी।

वैदिक परम्परानुसार ब्राह्मण के बाद क्षत्रिय का स्थान आता है। प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, विषयों में आसक्ति न रखना प्रधानरूप से क्षत्रिय के कर्म बतलाये गये है[25] रामायण में कहा गया है कि उनका प्रधान कार्य चातुर्वर्णों की रक्षा करना है[26]। क्षत्रियों को वर्णव्यवस्था कम में ब्राह्मण के बाद रखकर समाज में उसे दूसरे स्थान पर रखा गया है लेकिन साहित्यिक साक्ष्यों विशेष रूप से बौद्ध एवं जैन ग्रंथों मे इस बात को चुनौती दी गई है और क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य ऐसा ही क्रम

मिलता है। बुद्ध ने अम्बष्ट से खुले रूप मे कहा है कि ब्राह्मणहीन है क्षत्रिय श्रेष्ठ[27]। रिजडेविस ने इस बात का समर्थन किया है और कहा कि क्षत्रिय अपने को ब्राह्मण से श्रेष्ठ मानते थे तथा ब्राह्मणों के द्वारा अपने को सर्वश्रेष्ठ घोषित करना क्षत्रिय जनता को स्वीकार भी नहीं था[28]। बुद्ध और महाबीर दोनों ने जन्मनावर्ण–व्यवस्था के स्थान पर कर्म प्रधान वर्ण–व्यवस्था की बात कही तथा ऐसा माना कि न तो कोई जन्म से चाण्डाल होता है न तो ब्राह्मण[29]। केवल ब्राह्मण ही स्वर्ग भोगने के अधिकारी नहीं हैं वरन् पुण्य कर्मों द्वारा शेष वर्ण भी इसके अधिकारी हो सकते है[30]। महाभारत में भी ऐसा उद्धरण मिलता है जहां राजकुमारी शर्मिष्ठा ब्राह्मण पुत्री देवयानि से यह कहती है कि तुम्हारा पिता मेरे पिता के यहॉ हमेशा बैठकर चाटुकारिता किया करता है। ब्राह्मण से क्षत्रियो की श्रेष्ठता के बारे मे जो साक्ष्य मिलते हैं उन साक्ष्यों के महत्व का अतिरंजन अनुचित होगा क्योंकि सामान्य रूप से इसी प्रकार के साक्ष्य में प्राप्त होते है जिसमें इसके ऊपर जोर दिया गया कि समाज के कल्याण के लिए ब्रह्म और क्षत्र दोनों का सहयोग होना चाहिए। सामाजिक, धार्मिक एवं प्रशासकीय क्षेत्र में दोनों वर्णों के पारस्परिक सहयोग को नकारा नहीं जा सकता। गौतम ने इस बात के सम्बंध में लिखा है कि राजा एक विद्वान ब्राह्मण होने से ही धर्म की प्रतिष्ठापना होती है[31]। महाभारत में भी ऐसा कहा गया है कि ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों को पारस्परिक सहयोग से काम करना चाहिए[32]। प्रजा रक्षन् और प्रजा पालन ही क्षत्रिय का मुख्य कर्म माना गया है। प्रजारक्षण के लिए युद्ध करना और राज्य शासन की व्यवस्था करना ही क्षत्रिय का कर्म था दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि क्षत्रिय कर्म के दो ही मुख्य क्षेत्र ये प्रथम 'सामरिक' द्वितीय 'प्रशासनिक' ।

यद्यपि सामान्य रूप से क्षत्रिय के जीविका की चर्चा में कहा गया है कि शस्त्रास्त्र के ही ऊपर उनकी जीविका निर्भर है[33] । लेकिन ऐसा नहीं लगता कि क्षत्रिय वर्ण का प्रत्येक व्यक्ति युद्ध के ही ऊपर निर्भर रहकर अपनी जीविका चलाता था।

बौद्धग्रंथो में भी इस बात के काफी प्रमाण हैं कि क्षत्रिय खासकर राजकीय सेवाओं और सैन्य कार्यों से ही अपने को जोड रखे थे[34] और यही इनके जीवन के साधन थे। मनु ने ऐसे भी क्षत्रियों का उल्लेख किया है जिनके पास जमीन और पशु दोनो ज्यादे मात्रा मे थी[35]। सूत्रकारो एव स्मृतिकारों ने भी यह लिखा है कि अगर शस्त्र से जीविका चलने मे कठिनाई हो तो क्षत्रिय को वैश्यकर्म अपना लेना चाहिए[36]। साहित्यिक साक्ष्यो से ऐसा संकेत मिलता है कि क्षत्रिय वर्ण के लोग व्यापारिक कार्यों को करते थे लेकिन क्षत्रिय वर्ण के लोगों को ब्राह्मणों की तरह कई सामानों के व्यापार करने में प्रतिबन्ध था[37]।

अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धाश्च सर्वशः।

क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ।।मनु X–88।।

इस प्रकार जल, शस्त्र विष, मास, सोम, नमक, लतर, सर्वविष गंध, दूध, मधु, दही, घी, तेल, मोम गुड़ और कुशा को क्षत्रिय आपत्ति काल में न बेचें । पर एक जगह मनु ने क्षत्रियों को आपत्ति काल में ब्राह्मणों का कार्य न करने के लिए कहा जबकि क्षत्रियो का कार्य ब्राह्मण अपत्ति काल में कर सकते थे।

जीवेदेतेन राजन्य, सर्वेणाप्यनयं गतः।

न त्वेय ज्यायसीं वृत्तिमभिमन्नते कर्हिचित्।।मनु X – 95।।

यद्यपि पढ़ाना, यज्ञ करना और दान लेना उसके स्वधर्म के अन्तर्गत नही आते थे, लेकिन विशेष परिस्थिति में अब्राह्मण से भी वेदाध्ययन किया जा सकता है ऐसा उल्लेख मिलता है[38]। आपस्तब धर्म सूत्र के इस कथन को मनु के उस कथन से भी समर्थन मिल जाता है कि आपातकाल में क्षत्रिय भी ब्राह्मण को वेदाध्ययन करा सकता है[39]। यह कथन इस बात का परिचायक है कि क्षत्रिय भी ब्राह्मण के लिए निर्दिष्ट

कार्यों को करने में समर्थ था और वैदिक सहित्य मे निपुण होने पर वह आचार्य का भी पद ग्रहण कर सकता था। जनक, अजातशत्रु, अश्वथामा, कैकेय, अश्वपति, ऐसे अनेक क्षत्रिय आचार्यों ने अपने काल के बौद्धिक जगत में एक नया आयाम प्रस्तुत किया। दण्ड व्यवस्था में क्षत्रिय की स्थिति ब्राह्मण के बाद की थी। एक ही अपराध मे ब्राह्मण को क्षत्रिय की अपेक्षा कर्मदण्ड मिलता था[40]।

वर्ण–व्यवस्था क्रम में ब्राह्मण और क्षत्रिय के बाद वैश्य को तृतीय स्थान प्राप्त था जिसका प्रमुख व्यवसाय कृषि और वाणिज्य था। महाभारत में वैश्यो के कर्म का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि इन लोगो का प्रधान उद्देश्य था धनार्जन करना[41]। धनार्जन के निमित्त वह कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य का कार्य करता था[42]। महाभारत में ही यह कहा गया है कि वह समाज का ऐसा वर्ग था जिसने अध्ययन और यजन के कर्मो को छोडकर कृषि कर्म तथा गोपालन वृत्ति का पालन किया[43]। बशिष्ठ ने कृषि, पशुपालन, व्यापार और रुपया ब्याज पर देना वैश्य का मुख्य पेशा माना[44]। गौतम ने इनके कर्मों का उल्लेख करते हुए कहा कि ये लोग अपने को कृषि, वाणिज्य, पशुपालन और कुसीय में लगाये रहे[45]। कौटिल्य ने वैश्यों के कर्म के रूप में अध्ययन, यजन, दान, कृषि पशुपालन, वाणिज्य का उल्लेख किया जबकि मनु ने भी ऐसा ही माना और कहा कि पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढना, व्यापार करना, व्याज लेना और कृषि करना वैश्यों के कर्म थे[46]।

पशूना रक्षणं दानभिज्याध्ययनमेव च।

वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।मनु I –90।।

बौद्ध साहित्य में वैश्यवर्ण के लिए वेस्स, गहपति, कुटुम्बिक, सेट्ठि शब्द मिलते हैं[47]। यद्यपि कि डॉ0 फिक ने माना कि गहपति शब्द का उल्लेख ब्राह्मण क्षत्रिय के लिए भी हुआ है[48]। लेकिन ऐसा लगता है कि गहपति शब्द वैश्य के लिए सामान्य

रूप से प्रयुक्त हुआ करता था। महावग्ग[49] मे मेण्डक गहपति का उल्लेख हुआ है। अनाथपिण्डिक का भी उल्लेख गहपति के ही रूप मे प्राप्त होता है[50]। व्यापार करना वैश्य की स्वीकृत जीविका मानी जाती थी फिर भी कुछ ग्रंथों में उस क्षेत्र मे कुछ प्रतिबन्धों का उल्लेख मिलता है। महाभारत मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि मद्य, मास, लौह, चर्म का व्यापार वैश्य को नही करना चाहिए[51]।

वैश्यवर्ण का एक वर्ग आर्थिक दृष्टिकोण से सम्पन्न होने के कारण सामाजिक मर्यादा के साथ–साथ राजनीतिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण समझा जाता था एवम् राज्य को समय–समय पर आर्थिक सहायता भी सुलभ कराता था। व्यापार और वाणिज्य से जुडे लोगों के पास इस युग में आर्थिक विकास के साथ–साथ काफी धन भी हो गया था जिसके कारण ये लोग सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक दृष्टिकोण से काफी प्रभावशाली होते गये। अनाथ पिण्डक, गहति, मेण्डक गहपति आदि बौद्ध साहित्य में बहुचर्चित नाम है। मगध नरेश विम्विसार के राज्यकाल में ज्योतिष, जटिल, मेण्डक, पुन्नक और काकवलिया नामक धनी वैश्यों का उल्लेख मिलता है जो मगध राज्य के सम्पन्नता के स्तंभ समझे जाते थे[52]। विम्बिसार के प्रतिवासी राज्य कोशल के राजा प्रसेनजित ने अपने राज्य में बसने के लिए ऐसे लोगों को आमंत्रित किया और बिम्बिसार ने मेण्डक के पुत्र धनंजय को कोशल राज्य में बसने की अनुमति भी दी। धनंजय की पुत्री विशाखा की शादी में प्रसेनजित स्वयं शामिल भी हुआ[53]। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि धनवान वैश्यों का सामाजिक महत्व के साथ–साथ राजनीतिक महत्व भी था। वर्णक्रम में वैश्य की स्थिति ब्राह्मण और क्षत्रिय के वाद अवश्य थी लेकिन पेशे के दृष्टिकोण से और विशेषकर वर्तमान अध्ययन के लिए वैश्य वर्ण का महत्व ब्राह्मण क्षत्रियों से कहीं अधिक था।

बौद्ध साहित्य से विदित होता है कि कुछ सम्पन्न सेठियों का व्यापार दूसरे राज्यो तक भी फैला था। श्रावस्ती निवासी अनाथपिण्डक अपनी व्यापारिक वस्तुओं के क्रय विक्रय हेतु राजगृह की यात्रा किया करता था। जातकों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि नगर मे निवास करने वाले व्यापारी कुटुम्बिक कहे जाते थे जो धान्य का क्रय–विक्रय किया करते थे[54]। ऐसे लोग रुपया भी ब्याज पर दिया करते थे[55] और खेती के कार्यों मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाया करते थे[56]। राजसभा में ऐसे सेट्ठियों को काफी सम्मान प्राप्त था और राजा के संचालन में ऐसे लोग समय–समय पर अपना सहयोग प्रदान करते थे[57]। जातको में कथा आती है कि एक सेट्ठि ने भिक्षु सघ को 80 करोड़ कार्षापण सहायता रूप में दान दिया था[58]। ऐसे धनवान और प्रभावशाली वैश्यों के अतिरिक्त बहुत से सामान्य वैश्य थे जो कृषि और पशुपालन से अपनी जीविका चलाते थे। आर्थिक श्रम करने एवं कृषि–पशुपालन से जुड़े वैश्यों की संख्या समाज में संभवत. अधिक रही होगी। ऐसे वैश्यों की सामाजिक आर्थिक विशेषकर पेशे की दृष्टि से शूद्र से बहुत अलग नहीं रही होगी।

समाज के सबसे धनी वर्ग होने के कारण राजा इन्हीं से कर भी लेता था क्योकि समाज के आर्थिक ढाचें के आधार वैश्य वर्ण के ही लोग थे। कुछ ब्राह्मण–क्षत्रिय कर से मुक्त थे, अधिकतर शूद्र साधन हीन होने के कारण कर देने की स्थिति में ही नहीं थे अतः कृषि, व्यापार, शिल्प से जुड़े होने के नाते इन्हीं लोगों के ऊपर राज्य के कर का बोझ था। महाभारत[59] में ऐसा उल्लेख आया है कि सर्वाधिक धनी होने के कारण वही राजा को सबसे अधिक कर देता था। मनु[60] ने भी माना कि स्थल और जल के मार्ग से व्यापार करने में चतुर और बाजार के सौदों का मूल्य लगाने में निपुण व्यक्ति बाजार के अनुसार जिस वस्तु का जो मूल्य निश्चित करता था, उसके लाभ में से राजा को कर के रूप में बीसवां भाग मिलता था। पशु

और सुवर्ण का कर मूलधन का पचासवा भाग, धान्य का छठा भाग या आठवा या बारहवा भाग राजा को प्राप्त होता था[61]।

धर्मसूत्रों में सैद्धान्तिक रूप से कहा गया है कि गौ, ब्राह्मण और वर्ण की रक्षा के लिए वह शस्त्र धारण कर सकता है[62]। पर कौटिल्य के अर्थशास्त्र जैसे साक्ष्य से ऐसा प्रतीत होता है कि वैश्य भी सैनिक वृति किया करते थे। कौटिल्य ने कुछ शस्त्रोपजीवी श्रेणियो का भी उल्लेख किया है। सार्थवाह के नेता की योग्यताओं के ऊपर चर्चा करते हुए कुछ लेखकों ने उसकी युद्ध पारदर्शिता और सामरिक गुण के ऊपर जोर दिया है। इन साक्ष्यौं से ऐसा लगता है कि सैनिक वृति भी कुछ वैश्य सम्भवत· अपनाया करते थे। क्योंकि वैश्य वर्ण के साथ आर्थिक जीवन का (ब्राह्मण और क्षत्रिय की तुलना में) अधिक घनिष्ठ सम्पर्क था। अत· पेशेवर वर्गों के अध्ययन के सन्दर्भ में वैश्य वर्ण का महत्व ब्राह्मण और क्षत्रिय से अधिक था। उपलब्ध साक्ष्यों से ऐसा भी प्रतीत होता है कि पेशों के आधार पर वैश्य वर्ण, जिनकी संख्या काफी वृहद रही होगी[63] वैदिक साहित्य में सम्पूर्ण सामान्य प्रजा गोष्ठी के लिए विश शब्द का व्यवहार हुआ है। इसी से ही स्पष्ट है कि इनकी संख्या विशिष्ठ ब्रह्म और क्षत्र से कहीं अधिक रही होगी और यह वर्ण सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व करता था[63]। कई अलग–अलग समुदायों में विभाजित हो गये थे या हो रहे थे। सार्थवाह, कुलीक, श्रेणि, नेगम, मणिकार, हिरण्यकार वणिक् आदि अलग–अलग समुदायों में विभाजित होने के कुछ प्रमाण समकालीन साक्ष्यों से प्राप्त होते हैं।

वर्ण–व्यवस्था क्रम के अन्तिम चरण में शूद्र थे। मनु ने ऐसा माना है कि द्विज वर्णों की सेवा ही शूद्र का अपना धर्म है और इसी से उसे परमसुख की प्राप्ति हो सकती है[64]। महाभारत में भी अन्य वर्णों की सेवा करना ही उसका प्रधान धर्म कहा गया[65] अगर वह क्षत्रिय वैश्य की सेवा न करें तो क्षम्य है लेकिन ब्राह्मण की सेवा

करना उसका प्रधान लक्ष्य है[66]। ब्राह्मण उसे सेवा के बदले जूठा अन्न, पुराने वस्त्र, धान का पुआल तथा पुरानी खाट एवं पुराने बर्तन देता था[67]। ब्राह्मण सेवा से शूद्र का जीवन निर्वाह न हो तो उसे क्षत्रिय–वैश्य की सेवा करनी चाहए[68]। जातकों मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि सेवा के बदले शूद्र को डेढ़ मासक मजदूरी प्रतिदिन मिलती थी[69]। बौद्ध साहित्यों, सूत्रग्रन्थों, स्मृतियो के अध्ययन से लगता है कि समाज मे शूद्रो की स्थिति अत्यंत हेय थी। समाज मे अत्यन्त निम्नतम स्थान प्राप्त होने के कारण वैदिक साहित्य के अध्ययन की बात तो दूर रही, वेद को सुनना भी उसके लिए मना था। गौतम ने लिखा भी है कि वैदिक मंत्रों को सुनने वाले शूद्र की जिह्वा काट लेनी चाहिए[70]। आपस्तम्ब ने उसके सामने वेद पाठ करने की मनाही कर दी[71]। उपनयन संस्कार से हीन होने के कारण वह शिक्षा का अधिकारी नहीं था और मंत्र हीन होने के कारण वह यज्ञ नहीं कर सकता था क्योंकि वह श्मसान की तरह अपवित्र माना जाता था[72]। महाकाव्यों से ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि अनाधिकार रूप से वह यज्ञ तपस्या करता भी था तो समाज में उसे उपेक्षित माना जाता था। तपस्या करने के कारण शूद्रवर्ण के शम्बूक का वध राम ने कर दिया था[73]। लेकिन महाकाव्यों के कथनों में कहीं कहीं विरोधाभास भी मिलता है। जहॉ एक ओर शूद्र प्रतिनिधियों को वेद पढने और यह करने की मनाही थी[74] वहीं दूसरी ओर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ में शूद्र प्रतिनिधियों को आमंत्रित भी किया था, ऐसा भी उल्लेख मिलता है[75]। यज्ञ करने की भी स्वीकृति शूद्रों को मिल चुकी थी[76] साथ ही साथ मंत्रिमण्डल में भी शूद्र प्रतिनिधियों का होना आवश्यक माना गया जो उसकी सामाजिक स्थिति का ही बोध कराता है। तमाम साक्ष्यों के अवलोकन से एक बात स्पष्ट होती है कि सामान्य रूप से शूद्रों की स्थिति दयनीय थी भले ही कुछ शूद्र अपने सत्कर्मों एवं सद्‌गुणों के चलते समाज में प्रतिष्ठित रहे हों। महाभारत में विदुर, मातंग जैसे शूद्रवर्ण के लागों का उल्लेख करना इसी रूप में आवश्यक जान पडता है[77]।

यद्यपि सूत्रग्रंथों मे शूद्र की तुलना पशुओ से की गयी[78] लेकिन महाकाव्यो, स्मृतियो के उल्लेखो से शूद्रों की परिवर्तित दशा का आभास मिलता है। मनुस्मृति में उल्लेख भी मिलता है कि काष्ठशिल्प, धातु शिल्प, चित्रकला आदि कार्यों को सम्पादित करने का अधिकार शूद्रों को है[79] महाभारत में कहा गया है कि सेवा–वृति से आजीविका न चल पाने की स्थिति में वे व्यापार, पशुपालन, और विभिन्न शिल्प को ग्रहण कर सकते थे[80]। कौटिल्य ने भी लिखा है कि शूद्र का निर्वाह द्विजों की सेवा से ही सम्भव है, किंतु वे शिल्पियों, नर्तकों अभिनेताओं आदि का व्यवसाय करके भी अपना जीवन निर्वाह करते हैं[81] बौद्ध ग्रन्थों मे भी शूद्रों के शिल्पी वर्गों तच्चक, कम्भार, दन्तकार, कुम्भकार का उल्लेख है और इनके व्यवसायों को हीन कोटि का माना गया है[82]। गौतम ने लिखा है कि शूद्र यांत्रिक शिल्पों का सहारा ले सकते हैं[83]। निश्चित रूप से शूद्र समुदाय के कुछ लोग बुनकर लकड़हारे, लोहार, चर्मकार, कुम्भकार, रंगरेज के रूप में काम करते थे[84] ।

मौयोत्तर काल में समाज की स्थिति संभवतया वैसी ही थी जैसे मिस्र के पुराने साम्राज्य के पतन के बाद थी। इस काल में कुछ दिनों तक आम जनता पुरोहितों और अभिजातों से लड़ती रही और सुस्थापित व्यवस्था पर चोट करती रही। मनु के नियम मौर्य साम्राज्य का पतन होने पर सामने आने वाली विघटनकारी तत्वों से निपटने के लिए बनाए गये थे न कि अशोक के कार्यों को प्रभाव शून्य बनाने के लिए। शूद्रों को गुलाम बनाकर रखने पर जो उन्होंने जोर दिया है उसकी आवश्यकता इसलिए हुई कि वे काम करने से इंकार करते थे। उन्होंने राजा को आदेश दिया है कि वह वैश्य और शुद्र को अपना–अपना कर्म करने के लिए वाध्य करें। जिससे प्रकट होता है कि सामान्य जन को दो उच्च वर्णों के साथ अपना हित जुडा हुआ नहीं दिखाई देता है। मनु का कथन है कि राजा को वर्ण–धर्म कायम रखना चाहिए क्योंकि जो राज्य वर्णों के अंतर्मिश्रण से दूषित होता है, वह अपने

निवासियो सहित विनष्ट हो जाता है, अर्थात सुस्थापित व्यवस्था नष्ट हो जाती है। ये आदेश सामान्यतया ई. सन की तीसरी शताब्दी में रोम साम्राज्य द्वारा जारी किए गए आदेशो के समान थे जिनमें विभिन्न व्यवसाय के लोगों को अपने-अपने व्यवसायों से लगे रहने को कहा गया है किन्तु मनु ने कुछ धार्मिक अनुशास्ति और दण्ड का भी विधान किया है। शूद्र यदि अपना कर्तव्य नहीं करेगा तो उसका जन्म चैलाशक के रूप मे होगा और यदि वह निष्ठा पूर्वक अपना कर्तव्य निभाएगा तो अगले जन्म मे उच्च वर्ण में पैदा होगा।

इस काल में चारों वर्णों में ब्राह्मण व क्षत्रिय को उत्कृष्टता प्रदान की गयी है। साथ ही आपत्ति काल में इनके लिए आपद्धर्म की भी व्यवस्था की गयी है। मनु ने पुरानी सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने की कडी वकालत की है जिसमें शूद्रों की स्थिति मात्र सेवा मात्र के लिए ही बनी थी। मनु ने इस पुराने सिद्धान्त को दुहराया है कि ईश्वर ने शूद्रो को आदेश दिया है कि वे उच्च जातियों की सेवा करें[85]। राजा को चाहिए कि वैश्य को आदेश दे कि वह व्यापार करे, रुपये का लेन देन करे, खेती करे या मवेशी पालन करे और शूद्र को यह आदेश दे कि वह तीन उच्च वर्णों की सेवा करें[86]। आपद्धर्म के अध्याय में मनु ने यह भी कहा है कि शूद्र ब्राह्मण की सेवा करे[87]। ऐसा नहीं होने पर वह क्षत्रिय की सेवा करे, अथवा किसी धनी वैश्य की भी चाकरी करके अपना जीवन निर्वाह करें[88]। इस संबंध में आपि (भी) शब्द पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि इससे ध्वनित होता है कि वैश्य शायद ही शूद्र का मालिक होता था[89] इससे यह भी पता चलता है कि आपात काल में शूद्र की सेवा मुख्यतया ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए सुरक्षित रहती थी। एक अन्य स्थान पर मनु ने वर्णित किया है कि राजा सावधानी के साथ वैश्यों और शूद्रों को वाध्य करे कि वे अपने नियत कार्य किया करें, क्योंकि यदि ये दोनों वर्ण अपने कर्तव्यों से विमुख हो जायेंगे तो सारे संसार में गडबड़ी फैल जायेगी[90] इस परिच्छेद का विशेष महत्व है

क्योंकि यह किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं मिलता। इस तरह के विधान से सामाजिक–आर्थिक संकट का आभास होता है। युग पुराण से भी इस बात की पुष्टि होती है, जिसमें कहा गया है कि इस काल में स्त्रियाँ भी हल जोतती थीं[91] मनु के एक नियम की जो टीका कुल्लूक ने की है, उससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कुछ ऐसे ह्रासोन्मुख किसान और व्यापारी थे जिन्हें राजा ने अपना गुप्तचर वहाल कर रखा था।[92] मनु का दूसरा नियम है कि जिन शूद्रों का जीवन निर्वाह मे कठिनाई हो, वे देश के किसी भी भाग मे (अर्थात म्लेच्छों के देश में भी) बस सकते हैं।[93] इस नियम से ऐसे संकट का सकेत मिलता है जिसका प्रभाव उत्पादन करने वाली जनता पर गभीर रूप से पडा था। वैश्यों और शूद्रों से काम कराने का सुझाव देने की आवश्यकता मनु को इसलिए पड़ी होगी कि विदेशी आक्रमणों के कारण सामाजिक विप्लव गंभीर रूप धारण कर चुका होगा। प्रायः जब मौर्यों के कठोर शासन का अंत हुआ तब वैश्यों और शूद्रों को उनके निहित कर्तव्यों की सीमा बाँध रखना और भी कठिन हो गया।

उपर्युक्त निर्देशों से यह भी पता चलता है कि वैश्यों और शूद्रों के कार्यों में पडने वाले अतर क्रमशः मिटते जा रहे थे। मनु ने विहित किया है कि यदि आपातकाल में वैश्य के लिए अपने व्यवसाय से भरण पोषण करना कठिन हो तो उसे शूद्रो के व्यवसाय अपनाने चाहिए अर्थात द्विजों की सेवा करके जीवन यापन करना चाहिए[94] मिलिन्दपन्हों के एक प्रश्न से भी इस बात की पुष्टि होती है जिसमें कृषि व्यापार और पशु पालन वैश्य और शूद्र जैसे सामान्य जन के कार्य माने गए है।[95] और इन दोनों वर्गों के कार्यों का अलग से कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

यद्यपि वैश्य को शूद्र के निकट बताने की प्रवृत्ति चल पड़ी थी फिर भी कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता जिससे पता चले कि शूद्र स्वतन्त्र रूप से जीविकोपार्जन

करते थे। सामान्यतया वे भाडे के मजदूर और गुलाम के रूप मे नियोजित होते रहे, क्योकि मनु ने उस पुराने नियम को ही दुहराया है कि शिल्पी, यान्त्रिक और शूद्र जो शारीरिक श्रम करके अपना निर्वाह करते है, कर चुकाने के बदले महीने मे एक दिन राजा का काम करें।[96] उन्होंने एक नया नियम बनाया कि वैश्य कर के रूप मे अपने गल्ले का 1/8 हिस्सा चुकाकर और शूद्र शारीरिक श्रम लगाकर आपातकालीन स्थिति को संभाले।[97] इस प्रसंग मे कुल्लूक ने जोरदार शब्दो में कहा है कि बुरे दिनों मे भी शूद्रो पर कर नहीं लगाए जाएँ।[98] मनु ने शूद्रों को करों से विमुक्ति दी है जिसकी पुष्टि मिलिन्दपन्हों से होती है। इससे हमें यह जानकारी मिलती है कि हर गॉव के अपने दास या दासी भटक और कर्मकर होते थे, जिन्हें करो से मुक्त रखा जाता था।[99] अत: शुद्र को राज्य का कर चुकाने वाला किसान नही बताया गया है और यह स्थिति वैश्यों से भिन्न मालूम होती है। राजा के अष्ट विध कर्म की चर्चा करते हुए मेघातिथि ने व्यापार, कृषि, सिंचाई, धन, बस्ती विहीन जिलो की बन्दोबस्ती, वनों की कटाई आदि का उल्लेख किया है।[100] किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि राज्य अपनी पहल पर दासों और कर्मकरों को कृषि कर्म में नियोजित करता था, जैसा मौर्य काल में होता था। महावस्तु में ग्राम मुखिया का वर्णन आया है जो खेत का काम देखने के लिए तेजी से जा रहा है किन्तु यह पता नहीं चलता है कि वह इस कार्य का सम्पादन राजा की ओर से करता था।[101] मालूम होता है कि अलग–अलग मालिक शूद्रों से कृषि मजदूर का काम कराते थे। पतंजलि ने एक ऐसे भूस्वामी का जिक्र किया है जो एक जगह बैठकर भाड़े के पॉच मजदूरों द्वारा की जाने वाली जुताई का निरीक्षण करता है[102]। मनु ने किसान मालिक के नौकरों की भी चर्चा की है[103]। उनका कथन है कि कृषक को अपनी पारिवारिक संपत्ति के बॅटवारे मे ब्राह्मण पुत्र के लिए एक अतिरिक्त हिस्सा बनाकर रखना चाहिए[104]। स्पष्ट है क यह ब्राह्मण के अधीन रहने वाले कृषि मजदूरों का हवाला देता है।

मनु ने कई ऐसे विधान बनाए है जिनसे शूद्रो की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। उन्होने वर्ण के अनुसार व्याज की भिन्न–भिन्न दरें निर्धारित की है यह पुराना नियम था[105]। वर्णों के अनुसार व्याज की दरें क्रमश· दो, तीन, चार या पॉच, प्रतिशत होनी चहिए[106]।

मनु का विचार है कि शूद्र को सपत्ति जमा नही करने देनी चाहिए, क्योंकि इससे वह ब्राह्मणों को सताने लगेगा[107]। मनु के अनुसार रुपये जिस व्यक्ति के पास जमा किए जाएं उसकी योग्यता यह होनी चाहिए कि वह आर्य हो[108]। शूद्र स्वय ही उस योग्यता से वंचित है। किन्तु ई0 सन की दूसरी शताब्दी में सातवाहन के राज्य में रुपये कुंभकारों, तेल मिल के मालिकों[109] और बुनकरों[110] के पास भी जमा किए जाते थे।

मनु ने विहित किया है कि ब्राह्मण अपने शूद्र दास के सम्मान को निर्भयता पूर्वक जब्त कर सकता है क्योंकि उसे संपत्ति रखने का अधिकार नहीं है[111]। मनु का मत है कि क्षत्रिय भूखा क्यों न रह जाए, वह किसी पुण्यात्मा ब्राह्मण की सम्पत्ति हरण नहीं कर सकता, लेकिन वह किसी दस्यु या अपने पवित्र कर्तव्य से च्युत होने वाले लोगों की संपत्ति हड़प सकता है[112]। इससे पता चलता है कि जो क्षत्रिय और वैश्य अपने अनिवार्य धार्मिक कृत्यों की अवहेलना करते थे उनकी सम्पति हरण कर ली जा सकती थी। ऐसी स्थिति में शूद्रों को सुरक्षित नहीं समझा जा सकता है, क्योकि मनु ने नियम बनाया है कि शुद्र को यज्ञ से कोई सरोकार नहीं है, इसलिए यज्ञ करने वाले द्विज यज्ञ के लिए अपेक्षित दो या तीन सामग्री उससे ले सकते हैं[113]। इन सभी नियमों से मालूम होता है कि मनु ने शूद्रों को आर्थिक दृष्टि से हीन बनाकर रखने का प्रयास किया है।

मौयोत्तर काल में कामगारों को दी जाने वाली मजूरी और निम्न वर्ग के लोगों के जीवन निर्वाह की सामान्य स्थिति का कुछ आभास मिलता है। एक बात मे मनु ने कौटिल्य के सिद्धान्त का अनुसरण किया है और बताया है कि मजदूरी पर रखा गया चरवाहा मालिक की सहमति से दस गायों में से सबसे अच्छी एक गाय को दुह ले सकता था[114]।

मनु ने यह बताते हुए कि शुद्रो का काम ब्राह्मणों की सेवा करना है, उन्होंने विहित किया है कि शूद्रों का निर्वाह व्यय तय करने में उनकी योग्यता, काम और आश्रितो की संख्या का ख्याल किया जाना चाहिए[115]। उन्होंने गौतम के उस अनुदेश को दुहराया है कि इन सेवकों को जूठन और पुराने कपडे तथा विस्तर दिये जाने चाहिए।

नगरों में मजदूरों के लिए अलग मुहल्ले में मजदूर जीर्ण शरीर, अस्त–व्यस्त बाल और मैले कुचैले कपड़े से पहचाना जाता था।

मौर्योत्तरकाल में शूद्रों और वैश्यों के बीच आर्थिक भेदभाव मिटते जा रहे थे, पर शूद्र मुख्यतया अलग–अलग भूस्वामियों के खेतों मं कृषि–मजदूर का काम कर रहे थे। पूर्व काल की अपेक्षा शिल्पी अधिक स्वच्छंद होकर अपना काम करते थे। इन शिल्पियो की न केवल संख्या बढ़ी थी और उनमें विविधता आई थी, बल्कि उनके उज्जवल भविष्य के लक्षण भी दिखाई पड़ने लगे थे। मनु के विधान, जिनके ,द्वारा शूद्रों पर नई आर्थिक अशक्तताएँ आरोपित की गई थी, प्रायः प्रभावहीन हो गए थे। किंतु शूद्र समुदाय के रहन–सहन की स्थिति में किसी प्रकार के परिवर्तन का आभास नहीं मिलता।

मनु ने मौर्योत्तरकालीन राज्य–व्यवस्था में शूद्रों की स्थिति के बारे में विशद सूचना दी है। उन्हांने विहित किया है कि स्नातक को शूद्र शासक के देश में नही

रहना चाहिए[116]। किन्तु ये शासक चतुर्थ वर्ण के नहीं मालूम होते है, क्योंकि उस काल के राजनीतिक इतिहास मे इनकी कोई चर्चा नहीं है। ये प्राय. ग्रीक, शक, पर्थियन और कुषाण शासकों का निर्देश देते हैं जो बौद्ध धर्म और वैष्णव धर्म के अनुयायी थे और जिन्हें मनु ने ऐसा पतित क्षत्रिय बताया है, जो ब्राह्मणो से परामर्श न लेने और बताए गए वैदिककृत्यो के संपादन में चूक के कारण शूद्रत्व की स्थिति में पहुँच गए थे[117]। पुराण में कलियुग के जो वर्णन आए हैं, उनमें बताया गया है कि शूद्र राजा अश्वमेध यज्ञ[118] करते थे और ब्राह्मण पुरोहितों से यजन कराते थे[119] कलि शासकों का हवाला देते हुए विष्णुपुराण में कहा गया है कि विभिन्न देशं के लोग इन शासको में मिल जाते थे और उनका अनुसरण करने लगते थे[12] संभव है यह बात विदेशी मूल के शासकों के बारे मे कही गई हो। वे अपधर्मी संप्रदायों के अनुयायी थे[121] जिसके चलते उनके प्रति मनु की वैरभावना और भी तीव्र रही होगी। ब्राह्मणो और इन शासकों में संपर्क नहीं बढने पाए, इसके लिए मनु ने इन शासकों के राज्यों में स्नातकों का बसना निषिद्ध माना है। उन्होंने यह भी विहित किया है कि ब्राह्मणों को क्षत्रिय जाति के अलावा किसी भी राज्य का उपहार नहीं ग्रहण करना चाहिए[122]। स्पष्ट है कि ये सारे नियम इस उद्‌देश्य से बनाए गए थे कि ब्राह्मण विदेशी शासकों को मान्यता न दें। किंतु धीरे-धीरे यह उत्कट वैर भावना घटने लगी और उनके प्रति सहिष्णुता बढ़ने लगी। अंततः विदेशी शासकों को हीनकोटि के ही सही, लेकिन क्षत्रियो की मान्यता दी गई।

इस काल के कुछ ऐसे बौद्ध भी मिलते हैं जो नीच जाति के शासकों को अच्छा नहीं मानते। मिलिंदपन्हों बताता है कि जिस व्यक्ति का जन्म नीच जाति में हुआ हो और जिसकी वंशपरंपरा हीन हो, वह राजा बनने योग्य नहीं है[123]।

मनु ने विहित किया है कि राजा को ऐसे सात या आठ मंत्री नियुक्त करने चाहिए, जिनके पूर्वज राजा के निष्ठावान अधिकारी रहे हों, जो अस्त्र–शस्त्र के संचालन में निपुण हों जो संभ्रात परिवार के हों और अनुभवी हों[124]। स्पष्ट है कि शूद्र शायद ही इतनी योग्यता वाला होगा।

मनु ने चेतावनी दी है कि जिस राज्य में शूद्र विधि (कानून) का व्यवस्थापन करे और राजा देखता रहे, उस राज्य की स्थिति वैसे ही गिरती जाती है, जैसे दलदल मे फँसी गाय नीचे की ओर धँसती जाती है[125]। ऐसे नियम प्राय. उन बर्बर शासकों के राज्यों का निर्देश करते हैं जिनहोने न्याय प्रशासन या अन्य प्रशासनिक कृत्यो के संपादन के लिए कुछ शूद्रों को नियुक्त किया होगा। किंतु मनु जोर देकर कहते हैं कि ऐसा ब्राह्मण भी जो मुख्यतया अपनी जाति के नाम पर (अर्थात अपने को केवल ब्राह्मण बताकर) ही जीवनयापन करता है, विधि का निर्वचन कर सकता है, पर शूद्र किसी भी दशा में न्यायाधीश (धर्मप्रवक्ता) नियुक्त नही किया जा सकता[126]। टीकाकारों का मत है कि आवश्यक होने पर क्षत्रियों की नियुक्ति न्यायाधीश के रूप में की जा सकती है[127] लेकिन टीका में वैश्यो का उल्लेख नहीं हुआ है। यह मनु के विचार के अनुकूल जान पड़ता है, जिसके अनुसार क्षत्रिय ब्राह्मण के बिना और ब्राह्मण क्षत्रिय के बिना उन्नति नहीं कर सकते। किंतु मिल–जुलकर रहने पर वे इस लोक और परलोक में भी सुखी रह सकते हैं[128] प्रायः ब्राह्मण प्रधान राज्यो में सभी प्रशासकीय और न्याय सबंधी पदों पर प्रथम दो वर्णों का एकाधिकार था।

मनु ने उस पुराने सिद्धांत को दुहराया है जिसके अनुसार चारों वर्णों के सदस्य और अछूत अपने–अपने समुदायों के मुकदमों में गवाह बन सकते हैं[129]। किंतु उन्होंने बताया है कि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, जो गृहस्थ और पुत्रवान हैं और देश के रहने वाले हैं, वादी द्वारा बुलाए जाने पर गवाही दे सकते हैं[130] कुल्लूक की राय में

यह बात दीवानी, अर्थात ऋण आदि से संबंधित मुकदमों मे लागू होती है[131] मनु का यह नियम पहले के नियमों की अपेक्षा अवश्य ही सुधरा हुआ है, जिसके अनुसार उच्च वर्णों के सदस्यो के मामले मे शूद्रो को गवाह के रूप में उपस्थित होने की अनुमति नही दी गई है। जहॉ तक मानहानि, हमला, जारकर्म और चोरी के मामले का प्रश्न है, किसी भी व्यक्ति को गवाही देने के लिए बुलाया जा सकता है, भले ही उसमे दीवानी मुकदमें के लिए अपेक्षित योग्यता हो या नही[132] यदि योग्य गवाह उपलब्ध न हो तो मनु ने चाकरों और सेवको को भी गवाह बनने की अनुमति दी है[133]। मनु ने गॉवो के बीच होने वाले सीमा–विवादों के मामलों के लिए वर्ण–विभेद नहीं किया है, गवाहों की जॉच ग्रामीण समूह के समक्ष होती थी[134]। जिन लोगों को मनु ने गवाहों के रूप में (खासकर दीवानी मामलों में) उपस्थित होने की अनुमति नहीं दी है, वे हैं शिल्पकार, कलाकार और नर्तक[135] कुल्लूक ने ऐसे निषेध को इस आधार पर उचित बताया है कि ये लोग बराबर अपने कार्य में व्यस्त रहते हैं और घूस देकर इन्हे अपने पक्ष मे किया जा सकता है[136]। मनु के अनुसार जन्मजात गुलामों को भी गवाही देने की अनुमति नहीं है[137]।

मनु ने अभिसाक्ष्य देने के पहले विभिन्न वर्णों के लोगों को चेतावनी देने के पुराने नियम को दुहराया है[138]। यदि कोई शूद्र गलत साक्ष्य दे तो वह भी पाप का भागी होगा[139], और उसे भयानक दैवी यातनाएँ भोगनी होंगी[140]। किंतु उन्होंने बताया है कि न्यायाधीश को चाहिए कि ब्राह्मण को सत्यनिष्ठा की, क्षत्रिय के रथ की या जिस पशु की सवारी वह करता हो उसकी, और वैश्य को अपनी गाय, और स्वर्ण की शपथ दिलाए और शूद्र को इस आशय की सभी रिष्टिकर पापों का अपराध उसके माथे चढेगा[141]। किंतु यह बड़ा अर्थपूर्ण है कि मनु ने शूद्र गवाह के लिए कोई विशेष राजदंड विहित नहीं किया है। उन्होंने यह सामान्य सिद्धांत निरूपित किया है कि झूठी गवाही देने पर राजा तीन नीच वर्णों के लोगों को जुर्माना और निर्वासन का

दड दे सकता है, लेकिन ब्राह्मण को केवल निर्वासित ही करेगा[142]। इसी प्रकार, ब्राह्मण शारीरिक दंड के भी भागी नहीं है। यह दंड केवल तीन नीच वर्णों के लोगों को ही दिया जा सकता है[143] इसलिए इन दृष्टियों से शूद्र को क्षत्रिय और वैश्य के साथ समान स्तर पर रखा गया है।

यह विहित किया गया है कि राजा को वादियों के मुकदमों को उनके वर्णक्रम से ग्रहण करना चाहिए[144]। विधि का व्यवस्थापन करने में उसे हर जाति के रीति–रिवाजों का ध्यान रखना चाहिए।[145] मनु भद्र लोगों के आचरण को विधि का स्रोत मानते हैं[146], और जैसा कि ई सन की 17वीं शताब्दी के एक टीकाकार ने बताया है, भद्र शूद्रों की प्रथा भी इसका स्रोत है[147]।

पुरानेविधि निर्माताओं की तरह मनु न्याय के प्रशासन में वर्णविभेद की भावनाओं से प्रेरित हैं, जिसका शूद्रों की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पडा है। यदि कोई क्षत्रिय किसी ब्राह्मण की मानहानि करे तो उसे सौ पण और इसी अपराध के लिए वैश्य को एक सौ पचास या दो सौ पण का जुर्माना किया जाएगा, किंतु शूद्र को शारीरिक दंड दिया जाएगा।[148] यदि कोई ब्राह्मण किसी क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र की मानहानि करे तो उसे क्रमशः 50, 25 या 12 पण का जुर्माना किया जाएगा[149]। यह ध्यान देने की बात है कि यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्रको अपशब्द कहे तो उसके लिए 12 पण का जुर्मना विहित किया गया है, क्योंकि गौतम धर्मसूत्र में ऐसी स्थिति के लिए किसी भी जुर्माने का उपबंध नहीं किया गया है[150]।

साधारणतया मनु ने उच्च वर्णों के लोगों के प्रति अपराध करने वाले शूद्रों के लिए बहुत कठोर दंड विहित किए हैं। यदि कोई शूद्र किसी द्विज को गाली देकर अपमानित करे तो उसकी जीभ काट ली जाएगी[151]। द्विज (द्विजाति) शब्द केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि किसी शूद्र द्वारा किसी वैश्य को

दुर्वचन कहे जाने पर यह दंड देना स्पष्टतया निषिद्ध है[152]। मनु ने यह भी विहित किया है कि यदि कोई शूद्र द्विज के नाम और जातियों की चर्चा तिरस्कार पूर्वक करे तो दस अंगुल लंबी गर्म लाल लोहे की कॉटी उसके मुँह में ठूँस दी जाएगी[153]। यदि वह उदडता के साथ ब्राह्मणों को उनका कर्तव्य सिखाए, तो राजा उसके मुँह और कान मे गर्म तेल डलवा देगा[154]। जायसवाल की राय है कि ये नियम धर्मप्रचार करने वाले विद्वान शूद्रो, अर्थात बौद्ध या जैन शूद्रों और उस तरह के अन्य शूद्रों के लिए बनाए गए है जो उच्च वर्णों के साथ समानता का दावा करते हैं[155]। स्पष्ट है कि ये नियम मनु के उन राजनीतिक विरोधियों के प्रति उद्दिष्ट हैं जो सुस्थापित व्यवस्था का निरादर करते हैं[156]। यह कहना कठिन है कि इस कानून का प्रवर्तन कहाँ तक हुआ। सभवतया वे कट्टरपंथी के प्रलाप थे और उन पर शायद ही अमल किया गया होगा[157]।

प्रहार और इसी प्रकार के अन्य अपराधों के मामले में शूद्रों के लिए विहित दंड बहुत कठोर थे। ऐसा उपबंध किया गया है कि अत्यज (नीच जाति) जिस अंग से उच्च जाति (श्रेष्ठ.) को कष्ट पहुँचाए वह अंग काट लिया जाएगा[158]। यहाँ कुल्लूक ने अत्यज का अर्थ शूद्र किया है[159] जो पूर्वकाल के ऐसे ही नियम से मिलता है[160]। 'श्रेष्ठ' शब्द से ब्राह्मणों का बोध होता है, न कि तीन उच्च वर्ण के लोगों का जैसा कि कहीं–कहीं समझा गया है[161]। एक श्लोक में मनु ने बताया है कि जो कोई अपना हाथ या छडी उठाएगा उसका हाथ काट लिया जाएगा, जो क्रोध में आकर पैर से मारेगा उसका पैर काट लिया जाएगा[162]। संभवतया यह भी ब्राह्मणों के प्रति शूद्रों द्वारा किए जाने वाले अपराध का संकेत करता है। आगे यह भी विहित किया गया है कि यदि 'अपकृष्टजः' (नीच कुल में जन्मा कोई व्यक्ति) उसी स्थान पर बैठने का प्रयास करे जिस पर उच्चजाति का कोई व्यक्ति (उत्कृष्टः) बैठा हो तो उसका चूतड़ दाग कर उसे निर्वासित कर दिया जाएगा अथवा राजा उसके चूतड़ में घाव करवा

देगा[163]। 'अपकृष्टज' शब्द शूद्र के लिए और 'उत्कृष्ट' ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त हुए है[164]। इसी प्रकार यदि अहंकारवश कोई शूद्र किसी ब्राह्मण पर थूके तो राजा उसके दोनो होठ कटवा देगा, यदि वह उस पर पेशाब कर दें तो उसका लिंग और यदि उसके सामने गंदी हवा छोडे तो उसकी गुदा कटवा देगा[165]। यदि शूद्र ब्राह्मण का बाल पकडकर खींचे तो राजा बेहिचक उसके हाथ कटवा देगा। उसे ऐसी ही सजा ब्राह्मण के पैर, दाढ़ी, गर्दन और अंडकोश पकड कर घसीटने के लिए दी जाएगी[166]। मनु ने ब्राह्मणो को जान–बूझकर कष्ट पहुँचाने वाले नीच शूद्र के लिए एक सामान्य दंड का विधान किया है, जिसके अनुसार राजा आतंक फैलाने के लिए कई प्रकार के शारीरिक दंड दे सकता है[167]। ब्राह्मणों को कष्ट पहुँचाने का अर्थ उसे शारीरिक दुःख देना या संपत्ति चुरा लेना किया गया है[168]।

ऊपर बताए गए अधिकांश नियम ब्राह्मणों के प्रति अपराध करने वाले शूद्रों के लिए बनाए गए हैं। विधिग्रंथ में इन नियमों के मात्र लिखे रहने से भी यह पता चलता है कि उच्चतर और निम्नतर वर्णो के बीच संबंध बहुत तनावपूर्ण था। यह सुनिश्चित करने का शायद ही कोई प्रमाण मिलता है कि ये नियम अमल में लाए जाते थे। किंतु महावस्तु से जानकारी मिलती है कि भाड़े के मजदूरों से काम कराने के लिए उन्हें कठिन से कठिन शारीरिक यातनाएँ दी जाती थी। इस ग्रंथ से ज्ञात होता है कि कुछ लोग इन मजदूरों को बेड़ियों और जंजीरों में जकड़वा देते थे और आदेश देकर कितनों के हाथ–पाँव छेदवा देते थे तथा उनकी नाक, मांस, नसों, बॉहो और पीठ को पॉच या दस बार चिरवा देते थे[169]। सद्धर्मपुंडरीक में कहा गया है कि एक संभ्रांत परिवार का नवयुवक काठ की बेड़ियों में जकड़ दिया गया था[170]। अतएव यह बहुत आश्चर्य की बात नहीं कि शूद्र अपराधियों को शारीरिक दंड दिए जाते थे। किंतु यह संदिग्ध बना हुआ है कि मनु के दंड विधान उन पर अक्षरशः लागू किए जाते थे।

एक ही कोटि की जातियों के लोगों के आपस में लड जाने पर कठोर दड विहित नही है। कहा गया है कि जो अपनी समकक्ष जाति का चमड़ा उधेडे या उसका खून बहाएं उस पर सौ पण जुर्माना किया जाएगा, जो मांसपेशी काटे उस छः निष्क और जो हड्डी तोड दे उसे निर्वासित किए जाने की सजा दी जाएगी[171]।

मनु ने हत्या के पाप का प्रायश्चित चांद्रायण व्रत द्वारा विहित किया है, जिसकी अवधि मारे गए व्यक्ति के वर्ण के अनुसार घटती–बढ़ती है। ब्राह्मण की हत्या करने पर तीन वर्ष का व्रत विहित किया गया है और शूद्र की हत्या के लिए सवा दो महीने का[172]। शूद्र की हत्या करने पर मनु के अनुसार दस गाय और एक साँड का वैरदेय चुकाना पडता है[173], जैसा कि पुराने विधि ग्रंथों में भी पाया जाता है। मनु ने यह भी बताया है कि इस जुर्माने का भुगतान ब्राह्मण को किया जाएगा[174]। इसी प्रकार पूर्वकाल के विधि निर्माताओं की भाँति उन्होंने शूद्र का वध करने के लिए वही व्रत विहित किया है जो छोटे–छोटे पशु एवं पक्षियों को मारने के लिए विहित हैं[175]। ये उपबध निसंदेह बताते हैं कि मनु शूद्र के जीवन को बहुत तुच्छ समझते थे। कितु विस्मय की बात यह है कि हत्या के संबंध में मनु के एक नियम में वर्णविभेद की कोई चर्चा नहीं दिखाई पड़ती। यदि सत्य बोलने से किसी क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के वध की संभावना हो तो मिथ्या वचन बोला जा सकता है और उस पाप के लिए सरस्वती को चरु चढ़ाकर प्रायश्चित किया जा सकता है।[176] मनु ने यह भी स्पष्ट किया है कि नारी, शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय का वध करना मामूली अपराध है, जिसके लिए अपराधी को जातिच्युत कर दिया जाता है[177]। किंतु इस नियम का एकमात्र उद्देश्य ब्राह्मण के जीवन की महत्ता पर जोर देना है।

मनु का विचार है कि वर्ण जितना ही ऊँचा हो, चोरी का अपराध उतना ही भारी होगा। शूद्र का यह अपराध लघुतम अपराध माना गया है[178], क्योकि यह समझा जाता है कि चोरी का अभ्यास उसके लिए सामान्य बात है।

दायविधि में मनुने ब्राह्मण के शूद्र पुत्र को संपत्ति का दसवॉ भाग देने के पुराने नियम का समर्थन किया है, अगर उसे उच्च जातियों की पत्नियों से पुत्र नहीं भी हो[179]। यहॉ उस पुराने विचार को भी दुहराया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य का शूद्रपुत्र कोई भी हिस्सा पाने का हकदार नही है। उसका पिता उसे जो दे दे, वही उसका हिस्सा बन जाता है[180]। शूद्र को नातेदार तो माना जा सकता है, किंतु उत्तराधिकारी नहीं[181]। जहॉ तक शूद्रों में हिस्से देने का प्रश्न है, उन्हें सौ पुत्र क्यों न हों, सब के हिस्से बराबर होंगे[182]। इस प्रकार केवल उच्च जाति के लोगों के शूद्र पुत्रों को हिस्सा मिलना निश्चित नही था। सामान्यतया शूद्र वर्ण के सदस्यों को संपत्ति का अधिकार प्राप्त था। एक अन्य विधान से भी यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है, जिसके अनुसार राजा को चाहिए कि जिस किसी वर्ण के सदस्यो की संपत्ति चोरों ने चुरा ली हो, उन्हें वह संपत्ति अवश्य वापस दिला दे[183]।

मनु के जारकर्म संबंधी नियमों मे शूद्र महिला के प्रति उतना विभेद नहीं किया गया है जितना शूद्र पुरुष के प्रति। यदि कोई ब्राह्मण अपने से तीन छोटे वर्णों की किसी अरक्षित महिला का गमन करे तो उसे पाँच सौ पण जुर्माना किया जाएगा किंतु किसी अंत्यज महिला के प्रति इसी तरह का अपराध किए जाने पर जुर्माना बढाकर एक हजार पण कर दिया जाएगा[184]। यदि कोई क्षत्रिय या वैश्य किसी रक्षित शूद्र महिला के साथ संभोग करे तो उसके लिए भी जुर्माने की राशि उतनी ही होगी[185]। यदि कोई ब्राह्मण किसी वृषली के साथ रात बिताए तो वह भिक्षाटन पर निर्वाह करके और प्रतिदिन धर्मग्रंथों का पाठ करके तीन वर्ष में उस पाप को दूर कर

सकेगा[186]। यद्यपि अधिकांश नियम ब्राह्मणों के नैतिक पतन को रोककर उसकी पवित्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए है, फिर भी उनसे स्पष्ट है कि मनु शूद्र महिला के सतीत्व की भी रक्षा करना चाहते है। यह उनके सिद्धात के अनुकूल है कि चारो वर्णों की महिलाओं की रक्षा की जानी चाहिए[187]।

किन्तु मनु का यह नियम कि लोगों को दूसरे की स्त्री से बात चीत नही करनी चाहिए शूद्रों के कुछ वर्णों यथा अभिनेताओ और गायकों पर लागू नही होता क्योंकि वे अपनी पत्नियों से प्रच्छन्न कर्म (वेश्या, कुटनी आदि का काम) कराकर निर्वाह करते है इतना ही नहीं जो कोई इन स्त्रियों और किसी मालिक की अधीनस्त दासी से बातचीत करे उसे मामूली जुर्माना चुकाना पड़ेगा इस कोटि में बौद्ध और जैन भिक्षुणियो को भी रखा गया है, क्योंकि उन्हें प्राया नीच जातियों से नियुक्त किया जाता था और भिक्खुओं की तरह उन्हें भी शूद्र मानकर हेय दृष्टि से देखा जाता था। मनु ने जारकर्मी शूद्र पुरूष के लिए अत्यंत कठोर दण्ड विहित किया है। जो शूद्र द्विज जाति की किसी आरक्षित महिला का समागन करे वह अपराध करने वाले अंग और अपनी सारी सम्पत्ति से च्युत कर दिया जायेगा और यदि ऐसा अपराध किसी रक्षित महिला के साथ किया जायेगा तो उसे अपना सर्वस्व और अपनी जान भी गवां देनी पडेगी। यहां द्विज शब्द प्रायः ब्राह्मण का संकेत देता है, क्योंकि नीचे के दो नियमों में ब्राह्मण महिला के साथ क्षत्रिय और वैश्य द्वारा किये गये अपराध के दण्ड का विधान किया गया है। किन्तु यदि ये दोनों किसी रक्षित ब्राह्मणी, जो किसी विशेष ब्राह्मण की पत्नी हो, के प्रति अपराध करे तो इन्हें भी शूद्र की तरह दण्डित किया जायेगा अथवा सूखी घास की आग जलाकर उसमें जला दिया जायेगा स्मरणीय है कि ऐसे मामलों में कौटिल्य ने केवल शूद्र अपराधी के लिए जलाकर मार डालने का दण्ड विहित किया है। वशिष्ठ ने क्षत्रिय व वैश्य अपराधियों के लिए इसी तरह के दण्ड का विधान किया है। मनु के एक परिच्छेद का यह अर्थ लगाया जाता है कि इस

तरह के मामलों में शूद्र को मृत्यु दण्ड दिया जायेगा चूँकि जारकर्मी शूद्र के लिए मृत्यु दण्ड का समर्थन सामान्यता अन्य श्रोतों से भी होता है अतः मनु का यह प्रावधान निष्प्रभावी नहीं रहा होगा।

दासता के संबध में मनु के नियम शूद्र की नागरिक हैसियत पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं कौटिल्य का मत है कि आर्य माँ या बाप का शूद्र पुत्र दास नहीं बनाया जा सकता है। किंतु यद्यपि मनु ने शूद्र पुत्रों को परिवार की संपत्ति में हिस्सा पाने का अधिकार दिया है, फिर भी उन्होंने इस प्रथा का कोई हवाला नहीं दिया है। सर्वप्रथम उन्होने ही यह सिद्धांत निरूपित किया कि दासता शूद्र के जीवन का शाश्वत रूप है। किंतु यह केवल ब्राह्मणों और शूद्रों के संबंध पर लागू होता है। मनु कहते हैं कि शूद्र खरीदा हुआ हो या नहीं, उसे दास बनना ही होगा, क्योंकि परमात्मा ने उसका सृजन ब्राह्मण की सेवा के लिए किया है। बाद के श्लोक में उन्होंने बताया है कि शूद्र भोगाधिकार से भुक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि भोगाधिकार उसमें अंतर्जात है। शूद्र की तुलना में द्विज जातियों के सदस्य को दास नहीं बनाया जा सकता है। यदि कोई ब्राह्मण किसी द्विज जाति के लोगों को दास के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य करे तो राजा उसे छः सौ पण जुर्माना करेगा। इस संबंध में कौटिल्य ने जुर्माने की वर्गीकृत योजना बनाई है। सबसे अधिक जुर्माना 48 पण है, जो ब्राह्मण को दास बनाने के लिए किया जा सकता है। मनु ने इन विभेदों का कोई निर्देश नहीं दिया है, पर तीन उच्च वर्णों के लोगों को दास बनाने के अपराध के लिए कहीं अधिक जुर्माने का उपबंध किया है।

मनु के विधिग्रंथ में भी सभी शूद्रों को दास नहीं माना गया है। शूद्र और दास के बीच कानूनी भेदभाव को मनु ने स्पष्ट रूप से मान्यता दी है और दासी (शूद्र के दास की दासी) से उत्पन्न शूद्र के बेटे की चर्चा की है। इस प्रकार यद्यपि दास

की बहाली सामान्यतया शूद्र वर्ण से की जाती थी, फिर भी कभी–कभी शूद्र भी दास रखते थे। किंतु शूद्र और उसके दास के बीच अंतर उतना व्यापक नही था जितना द्विज और उसके दास के बीच था। मनु का मत है कि यदि पिता की अनुमति मिले तो दासी से उत्पन्न शूद्र का पुत्र पैतृक संपत्ति में हिस्सा पा सकता है। कितु द्विज के ऐसे ही पुत्र के लिए उपबंध नही किया गया है। फलस्वरूप, मनु के उपर्युक्त नियम से जान पडता है कि दास को संपत्ति का अधिकार था। कुल्लूक ने मनु के एक परिच्छेद की जो टीका की है उसके अनुसार जब मालिक विदेश गया हो, तब उसके कारोबार संबंधी लेन–देन मे दास उसके परिवार का प्रतिनिधित्व कर सकता है, जिसे उसका मालिक रद्द नही कर सकता है। किंतु एक अन्य स्थल पर मनु ने इसे अस्वीकार किया है और कहा है कि वास्तविक स्वामी से भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा की गई बिक्री अमान्य घोषित कर दी जाती है। पहले बताया गया है कि सक्षम गवाहों के नहीं प्रस्तुत होने पर दास और नौकर भी गवाही दे सकते हैं। इन बातों से पता चलता है कि दासों को भी कानून की दृष्टि से कुछ हैसियत प्राप्त थी। कुछ दृष्टि से घरेलू दासों को परिवार का सदस्य माना जाता था। मनु ने परिवार के प्रधान को आदेश दिया है कि वह अपने माँ–बाप, बहन, पुत्रवधू, भाई, पत्नी, पुत्र, पुत्री और दास से वाद–विवाद नहीं करें। उन्होंने इसका कारण बताया है कि पत्नी और पुत्र गृहपति के शरीर के अंग हैं, पुत्री दया की पात्र हैं और दासों का वर्ग उसकी अपनी छाया है। इसलिए मनु का कहना है कि यदि ये लोग गृहपति का अनादर भी करें तो भी उसे शांतिपूर्वक उनके साथ रहना चाहिए। क्या इसका यह अर्थ लिया जाए कि पुरानी पारिवारिक एकात्मकता अस्थायी रूप से शिथिल पड़ गई थी? यह अजीब बात लगती है कि यह विधिनिर्माता मालिक को कहे कि दासों द्वारा किया गया अनादर सहन कर ले। किंतु दासों और भाड़े के जादूगरों को नागरिकों की भाँति अधिकार प्राप्त नहीं थे। यह निष्कर्ष मालवा और क्षुद्रक गणराज्यों में उस समय की स्थितियों से

निकाला जा सकता है। पाणिनि के एक परिच्छेद की टीका करते हुए पतंजलि ने बताया है कि क्षुद्रकों और मालवो के बेटे तो क्रमशः क्षौद्रक्य और मालव्य कहलाते हैं, पर उनके दासो और मजदूरों के बेटों पर यह बात लागू हीं होती।

शूद्रो की राजनीतिक–सह–विधिक स्थिति के बारे मे मनु अधिकतर पुराने विधिनिर्माताओं की राह पर चलते हैं। उनके नए नियमों में से कुछ नियम विदेशी शासकों और बाह्य धर्म के अनुयायियों के विरुद्ध हैं, जिन्हें अपमान की भावना से शूद्र कहा गया है और कुछ नियम खास शूद्र के लिए ही हैं। जो नियम शूद्रों के लिए ही हैं, वे भी मुख्यतया ब्राह्मणों के प्रति अपराध करने वाले शूद्रों से ही संबंधित है, किंतु इस संबंध में भी शूद्रों के प्रति मनु की घोर भेदभाव की नीति का कोई उल्लेखनीय प्रभाव लक्षित नहीं होता। उन्होंने शूद्र की हत्या के लिए न केवल वैरदेय का पुराना नियम रख लिया है, बल्कि शूद्र को गाली देने वाले ब्राह्मण के लिए 12 पण का जुर्माना भी विहित किया है। यह ऐसा प्रावधान है जिसे हम पूर्व के विधिग्रंथों में नहीं पा सकते। यह महत्वपूर्ण है कि इस काल के अंतिम भाग में सातवाहन शासक गौतमी पुत्र शातकर्णि (ई. सन 106–130) ने दावा किया है कि उन्होंने ब्राह्मणों और शूद्रो (अवरों) को समझा–बुझाकर वर्ण–व्यवस्था की गड़बड़ी को दूर किया और पुन चातुर्वर्ण्य व्यवस्था स्थापित की। वर्णों का यह नया व्यवस्थापन ब्राह्मण शासकों ने क्षत्रियों के विरोध में किया था, क्योंकि ये क्षत्रिय प्रायः बाहर के शासक वंश के थे।

शूद्रों की सामाजिक स्थिति के बारे में मनु के नियम बहुत हद तक पुराने विधिनिर्माताओ के विचारों की पुनरुक्ति लगते है। किंतु उन्होंने शूद्रों के प्रति कुछ नए भेदभाव भी बनाए हैं। उन्होंने सृष्टि–रचना की पुरानी कथा दुहराई है, जिसमें शूद्र का स्थान सबसे नीचे है। मनु ने चारों वर्णों के प्रति किए जाने वाले अभिवादन (प्रायः जैसा ब्राह्मण करते थे) की रीति की निर्धारक विधियों को भी दुहराया है।

कितु उन्होने यह भी बताया है कि जो ब्राह्मण सहीं ढग से अभिवादन का उत्तर नही दे उसे विद्वतजन कभी अभिवादन नहीं करें, क्योकि वह शूद्र के समान हैं। पतंजलि बताते है कि अभिवादन का उत्तर देने में शूद्रों के संबोधन का ढंग गैर शूद्रों से भिन्न था। शूद्रों को संबोधित करने का स्वर तेज नहीं होना चाहिए। 'भो' शब्द का प्रयोग राजन्य या वैश्य के संबोधन में किया जाता था, शूद्र के संबोधन में नहीं। अतः व्याकरण के नियमों में भी वर्ण विभेदों के आभास मिलते हैं। मनु का नियम है कि यदि कोई शूद्र सौ वर्ष का हो जाए तो उसका आदर किया जा सकता है। कितु यह नियम शूद्रों की बहुत सीमित संख्या पर ही लागू होगा।

मनु ने बच्चों के नामकरण संस्कार में भी वर्ण का विभेद किया है, जिससे स्वभावतया शूद्रों की हीनता झलकती है। उनका मत है कि ब्राह्मण का नाम मंगलसूचक, क्षत्रिय का नाम बलसूचक, वैश्य का नाम धनसूचक और शूद्र का नाम निंदासूचक होना चाहिए। इसी के अनुपूरक के तौर पर उन्होने बताया है कि चारों वर्णों की उपाधि क्रमशः सुखवाचक (शर्मा), सुरक्षावाचक (वर्मा), समुन्नतिवाचक (भूति) और सेवावाचक (दास) होनी चाहिए। इसके प्रमाण नहीं मिलते कि वह परिपाटी व्यापक रूप से प्रचलित थी, किंतु नामों के संबंध में मनु के नियमों से जान पड़ता है कि नीच वर्ण के लोग ब्राह्मण कालीन समाज में सामान्यतया घृणा के पात्र थे। इस प्रकार शूद्र के लिए प्रयुक्त 'वृषल' शब्द अपमानजनक माना जाता था। पाणिनि के समास संबंधी नियम का उदाहरण देते हुए पतंजलि ने बताया है कि 'दासी के सदृश (दास्याः सदृशः)' और 'वृषली के सदृश (वृषल्याः सदृशः) पद गाली है, जिनका अर्थ यह हुआ कि शूद्र और दास समाज में गर्हित माने जाते थे। वृषल को चोर की कोटि मे रखा गया था और दोनों के प्रति ब्राह्मण प्रधान समाज वैरभाव रखता था। यह भी जानकारी मिलती है कि वृषल, दस्यु और चोर घृणा के पात्र समझे जाते थे।'

शूद्र की सगत ब्राह्मण को दूषित करने वाली समझी जाती थी। मनु ने बताया है कि जो ब्राह्मण भद्रजनो की सगत मे रहता है और सभी नीच लोगो का परित्याग करता है, वह प्रतिष्ठित बन जाता है, कितु इसके विपरीत आचरण करने पर वह भ्रष्ट होकर शूद्र की स्थिति मे पहुँच जाता है। उन्होने इस प्रावधान को पुन· उद्धृत किया है कि स्नातक को शूद्रो के साथ नही घूमना–फिरना चाहिए। मनु ने प्राचीन नियम के पुन· उद्धृत किया है कि यदि वैश्य और शूद्र, किसी ब्राह्मण के घर अतिथि बनकर आएँ तो उन्हे कृपा पूर्वक नौकरो के साथ भोजन करने की अनुमति दी जानी चाहिए। मनु का नियम है कि स्नातक को शूद्र का अन्न नही खाना चाहिए। स्नातक को जिनका अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए, उनकी लबी सूची मे लोहार, निषाद, अभिनेता, स्वर्णकार, टोकरी निर्माता, शिकारी कुत्ते पालने वाला, शौण्डिकी (शराब चुवाने और बेचने वाले), धोबी और रगरेज शामिल कि गए है। यह भी कहा गया है कि राजा का अन्न खाने से स्नातक का तेज क्षीण होता है, शूद्र का अन्न खाने से विद्या (ब्रह्मवर्चस्) का, स्वर्णकार का अन्न खाने से आयु का और चर्मावकर्तिन (चर्मकार) का अन्न खान से यश का ह्रास होता है। यह बडे अचरज की बात है कि शूद्र समुदाय के विभिन्न वर्गों के अन्न के साथ ही राजा का अन्न भी स्नातक के लिए अकल्याणकारी बताया गया है। मनु ने यह भी बताया है कि शिल्पियो का अन्न खाने से स्नातक सतान विहीन होता है, धोबी का अन्न खाने से उसका बल घटता है और गण तथा गणिका (वेश्या) का अन्न उसे परलोक से च्युत करता है। यदि वह अनजाने इन लोगों में से किसी का अन्न खाए तो उसे तीन दिन अवश्य उपवास करना चाहिए, किंतु यदि उसने जान–बूझकर इनका अन्न ग्रहण किया हो तो उसे एक कठिन प्रायश्चित, जिसे 'कृछ' कहते है, करना चाहिए। मालूम होता है कि इन सभी प्रसंगों मे प्रायः स्नातक का अर्थ है, वेद पढने वाला ब्राह्मण वर्ण का छात्र। यदि इन प्रतिबंधों को लागू किया जाए तो परिणाम होगा नीच जातियो और शिक्षित ब्राह्मणो के बीच

सभी प्रकार के सामाजिक संपर्क को निषिद्ध करना। मनु ने विहित किया है कि पंडित ब्राह्मण को शूद्र का, जो श्राद्ध नही करते, सिद्धान्न कभी नहीं खाना चाहिए किंतु यदि उसके निर्वाह के अन्य सभी साधन लोप हो जाएँ तो वह शूद्र से उतना कच्चा अन्न ले सकता है जिससे एक रात गुजारी जा सके। असामान्य स्थिति में ये नियम मान्य नही है। मनु ने श्रेष्ठ मुनियों के कई दृष्टांत प्रस्तुत किए है, जिन्होंने आपतकाल मे निषिद्ध अन्न ग्रहण किया। भूखे विश्वामित्र, जो अच्छे और बुरे में विभेद कर सकते थे, चंडाल से प्राप्त कुत्ते की रान खाने को तैयार थे। सामान्य स्थिति में साधरणतया शूद्र का अन्न स्वीकार्य था। मनु का नियम है कि कोई व्यक्ति उस शूद्र का अन्न खा सकता है, जो उसका बटाईदार हो उसके परिवार का मित्र हो, उसका चरवाहा हो, उसका दास और उसका हजाम हो। पतंजलि में हमें सूचना मिलती है कि बढइयों, धोबियों और लोहारो ने जिस थाली में भोजन किया हो, उसे अच्छी तरह साफ करके उसका इस्तेमाल किया जा सकता है। इससे पता चलता है कि उच्च वर्णों और शूद्र समुदाय के इन वर्णों के बीच भोजन करने कराने की प्रथा थी। शूद्र का जूठा खाना महापाप समझा जाता था। कहा गया है कि जिसने औरतों और शूद्रों का जूठा खा लिया हो उसे सात दिन और सात रात तक जौ का घोल पीकर अशुचि का निवारण करना चाहिए। प्रायः यह नियम ब्राह्मण के लिए है। इसी प्रकार जो ब्राह्मण शूद्र का जूठा हुआ पानी पी लें, उसे कुश डालकर तीन दिनों तक उबाला गया पानी पीकर अपने पाप का प्रायश्चित करना चाहिए। मनु के नियम शूद्रों के आहार पर कुछ प्रकाश डालते हैं। द्विज को चाहिए कि यदि वह सुखाया हुआ मांस, जमीन में उगा हुआ कुकुरमुत्ता और कोई ऐसा मांस खा ले जिसके बारे में वह नहीं जानता हो कि मांस किस जीव का है अथवा मांस किस कसाई खाने से लाया गया है, तो उसे चांद्रायण व्रत रखना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई द्विज मांसभक्षी प्राणी, सूअर, ऊँट, मुर्गा, कौआ, मनुष्य और गदहे का मांस खा ले तो उसे अति कठिन व्रत, जो

'तप्त्कृछ्' कहलाता है, रखना चाहिए। यदि इन प्रसंगों में द्विज को प्रथम तीन वर्णों का सदस्य माना जाए तो इसका अर्थ होगा कि शूद्र सभी प्रकार का मांस खाने के लिए स्वतंत्र थे। मनु के एक परिच्छेद की टीका में कुल्लूक ने बताया है कि लहसुन और अन्य निषिद्ध कंद खाकर शूद्र ऐसा अपराध नहीं करता कि उसे जातिच्युत कर दिया जाए। इससे मालूम होता है कि लहसुन, प्याज और अनेक प्रकार के मांस नीच वर्ग के लोगों के वैध आहार माने जाते थे।

अनुमान है कि वैश्यों और शूद्रों के विवाह की रीति उच्च वर्णों से भिन्न थी। मनु ने विधिनिर्माताओ के मत उद्धृत किए हैं, जिनके अनुसार प्रथम चार प्रकार के विवाह, अर्थात ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्रजापत्य ब्राह्मण के लिए विहित हैं, राक्षस क्षत्रिय के लिए और आसुर वैश्य तथा शूद्र के लिए। उन्होंने यह भी बताया है कि ब्राह्मण 'आसुर' और 'गांधर्व' विवाह को भी अपना सकते हैं, क्षत्रिय भी आसुर, गांधर्व और पैशाच विवाह अपना सकते हैं और वही पद्धतियाँ वैश्य तथा शूद्र के लिए भी हो सकती हैं। इस तरह क्षत्रिय के लिए राक्षस पद्धति से विवाह करने का नियम बनाकर उन्हे केवल वैश्य और शूद्र से अलग किया गया है। किंतु यहॉ प्रायः मनु का मुख्य उद्देश्य है ब्राह्मणों को अन्य तीन वर्णों से अलग करना। जहाँ तक दो नीच वर्णों का संबंध है, वास्तविक स्थिति मनु द्वारा उद्धृत विवरण, जो आदिपर्व में भी आया है, से स्पष्ट होती है, जिसमें कन्या का आसुर विवाह (खरीदकर विवाह करना) सामान्यतया वैश्यों और शूद्रों में प्रचलित था। मनु का विचार है कि 'आसुर' और 'पैशाच' पद्धति से विवाह कभी नहीं करना चाहिए। कुल्लूक ने अपनी टीका में बताया है कि यह नियम ब्राह्मणों और क्षत्रियों पर लागू होता है। जिससे पता चलता है कि विवाह की ये दोनों पद्धतियॉ खासकर दो नीच वर्णों के लिए अभिप्रेत थी।

मनु के स्त्री धन संबंधी नियम विवाह की पद्धतियों के अनुसार भिन्न–भिन्न है। कहा गया है कि यदि आसुर, राक्षस और पैशाच पद्धति से विवाहिता स्त्री संतानहीन मर जाए तो स्त्री–धन उसके माँ–बाप को, अर्थात उसके माता–पिता के परिवार को मिलेगा न कि उसके पति के परिवार को, जैसा कि प्रथम चार और गांधर्व रीति के विवाह मे होता है। इससे पता चलता है कि वैश्य और शूद्र द्वारा अपनाई गई वैवाहिक पद्धतियों में मातृकुल का महत्व था।

मनु निश्चयपूर्वक कहते हैं कि जो विवाह वैदिक मंत्रों द्वारा संपन्न कराए जाते है, उनमें नियोग नहीं हो सकता। चूँकि ये मंत्र शूद्रों के विवाह में नहीं पढ़े जाते, इस लिए यह स्पष्ट है कि नियोग मुख्यतया शूद्रो तक ही सीमित था। यह निष्कर्ष मनु द्वारा आगे बताए गए अन्य विवरण से भी निकाला जा सकता है जिसमें उन्होंने जोर देते हुए कहा है कि विधवा विवाह और नियोग को शास्त्रों के जानकार द्विजपशुजन्य प्रथा मानते है। जाली का विचार है कि नियोग और विधवा–विवाह के सबंध में मनु के विचार परस्पर विरोधी है। क्योंकि कुछ परिच्छेदों में वह इनका समर्थन करते हैं और कुछ में उनकी निंदा करते है। किंतु यदि हम इस बात को ध्यान में रखें कि मनु ने नियोग और विधवा विवाह का समर्थन शूद्रों के लिए किया है और तीन उच्च्य वर्णों के संबंध में उन्होने इनकी निंदा की है, तो इन परिच्छेदों का समाधान आसानी से मिल जाएगा। शूद्रों में उपर्युक्त प्रथाओं के चलन से यह पता चलता है कि महिलाएँ अपने समुदाय मे दूसरों पर बहुत निर्भर नहीं थी।

एक वर्ण के साथ दूसरे वर्ण के विवाह के संबंध में मनु ने पुरानी उक्ति उद्धृत की है जिसमें उच्च्य वर्ण के लोगों को नीच वर्ण की महिला से विवाह की अनुमति दी गई है। लेकिन उन्होने यह भी बताया है कि यदि द्विज अपने वर्ण और अन्य छोटे

वर्णों की महिला से विवाह करे तो इन पत्नियों की वरीयता, हैसियत और निवास का निर्णय वर्णों के क्रम से किया जाएगा।

मनु इस विचार को नापसंद करते है कि ब्राह्मण या क्षत्रिय की प्रथम पत्नी कोई शूद्र महिला हो। उन्होंने बताया है कि प्राचीन कथा मे इसका कोई पूर्वोदाहरण नही मिलता है। प्रायः उच्च वर्णों के लोगों की शूद्र पत्नी का दर्जा बहुत नीचे रहता था। पतंजलि हमे सूचित करते हैं कि दासी और वृषली उच्च वर्ग के लोगों के भोग–विलास के लिए होती थी। मनु का कथन है कि जो द्विज शूद्र कन्या से विवाह करते हैं वे तुरंत अपने परिवार और बच्चों को पंक्तिच्युत करके शूद्र बना देते हैं। कुल्लूक का मत है कि यह नियम तीनों उच्च वर्णों पर लागू होता है। अपने कथन के समर्थन में मनु ने कई प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। अत्रि का विचार है कि यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्र कन्या से विवाह करे तो उसे जाति से बाहर कर दिया जाए। शौनक कहते हैं कि पुत्र उत्पन्न होने पर क्षत्रिय का भी यही हाल होना चाहिए और भृगु का कथन है कि यदि वैश्य के केवल शूद्र स्त्री से पुत्र उत्पन्न हो तो उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाए। किंतु मनु ब्राह्मण द्वारा शूद्र महिला के समागम का घोर विरोध करते हैं उनकी राय है कि ऐसा व्यक्ति मृत्यु के उपरांत नरक में जाएगा। यदि उसे शूद्र पत्नी से संतान उत्पन्न होगी तो वह ब्राह्मण नहीं रह जाएगा। और शूद्र से भिन्न कोई सतान नहीं रहने पर उसका परिवार शीघ्र नष्ट हो जाएगा। क्योंकि किसी ब्राह्मण के लिए उसका शूद्र बेटा जीवित रहने पर भी मुर्दे के समान है। यही कारण है कि वह पारशव कहलाता है। जो व्यक्ति वृषली का अधरपान करता है, उसकी साँस से दूषित बनता है और उससे पुत्र उत्पन्न करता है, उसके लिए कोई प्रायश्चित नहीं हो सकता। इस संदर्भ से स्पष्ट है कि यह निषेध केवल ब्राह्मण के लिए था।

मनु ने पुरानी वर्णसंकर जातियों, यथा निषाद पारशव, उग्र, अयोगव, क्षतृ, चंडाल, पुक्कुस, कुक्कुटक, श्वपाक और वेण का उल्लेख किया है, जिनके बारे मे कहा जाता है कि उनकी उत्पत्ति वर्णों के अंतर्मिश्रण से हुई है। उन्होंने इस तरह उत्पन्न नई जातियों की एक लंबी सूची दी है। ब्राह्मण उग्र की बेटी से आव्रत, अम्बष्ट की बेटी से आभीर और आयोगव जाति की स्त्री से धिग्वण को उत्पन्न करता है। इतना ही नही, आयोगव महिला से दस्यु द्वारा सैरंध्र, वैदेहक द्वारा मैत्रेयक, और निषाद द्वारा भार्गव या दाश उत्पन्न होता है, जो कैवर्त भी कहलाता है। चडाल वैदेहक महिला से पांडुसोपाक को और निषाद आहिडक को जन्म देता है। वैदेहक जाति की स्त्री से निषाद कारावर उत्पन्न करता है और वैदेहक कारावर स्त्री से अंध्र को तथा निषाद स्त्री से भेद को जनम देता है। निषाद स्त्री चांडाल से जो पुत्र उत्पन्न करती है वह अंत्यावसायिन कहलाता है जिसे वे लोग भी घृणा की दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि वह चातुर्वर्ण्य पद्धति से बाहर (बाह्य) है। मनु यह भी बताते हैं कि सूत, वैदेहक, चंडाल, मागध, क्षतृ और आयोगव इन्हीं जातियों की स्त्री से ऐसी संतान उत्पन्न करते है जो और भी अधिक हेय तथा अपने पिता से भी अधिक अधम समझी जाती है, और उसे वर्णव्यवस्था से बाहर रखा जाता है[188]। उनका यह भी कहना है कि बाह्य और हीन (निम्न वर्ग के लोग) उच्च जातियों की महिलाओं से पद्रह प्रकार की नीच जातियाँ उत्पन्न करते हैं। मनु ने इन जातियों का नाम नहीं गिनाया है, लेकिन जान पड़ता है कि वे ऊपर दी गई सूची के ही अंतर्गत हैं।

उपर्युक्त जातियों में उनके व्यवसायों के आधार पर अंतर किया जाता था। चंडाल, श्वपाक और अंत्यावसायिन अपराधियों को फाँसी देने का काम करते थे और उन्हें अपराधियों के वस्त्र, बिछावन और आभूषण दे दिए जाते थे। निषाद मछली पकड कर अपना निर्वाह करते थे, और भेद, अंध्र, मद्गु और चुंचु का काम जंगली जानवरो का शिकार करना था। क्षतृ, उग्र और पुक्कुरविवर में रहने वाले जंतुओं को

पकडने और मारने वाले बताए गए है। स्पष्ट है कि ये सभी लोग पिछडी जातियों के थे, जो ब्राह्मण प्रधान समाज में मिला लिए जाने पर भी अपना व्यवसाय करते रहे। मनु बताते हैं कि कुछ संकर जातियो ने महत्वपूर्ण शिल्पों को अपनाया। आयोगव ने लकडी का काम शुरू किया और धिग्वण तथा कारावर ने चमडे का एवं पांडुसोपाक ने बेत के कार्य का पेशा अपनाया। मार्गव या दाश नाविक के पेशे द्वारा जीविका अर्जित करते थे और आर्यावर्त के निवासी उन्हें कैवर्त कहते थे। वेण ढोल पीटने वाले थे, और सैरंध्र को श्रृंगार तथा अपने मालिक की सुश्रूषा में निपुण समझा जाता था। सैरंध्र यद्यपि गुलाम नहीं थे, फिर भी वे गुलाम की भॉति ही रहते थे, अथवा जानवरों को फॅसाकर गुजर–बसर करते थे। मैत्रेयक के बारे में कहा गया है कि वह सुरीली आवाज वाला था और सुबह होने पर घंटी बजाता था तथा महापुरुषों के प्रशस्तिगान में लगा रहता था।

उपर्युक्त ढंग की कुछ नीच जातियों का उल्लेख एक बौद्ध ग्रंथ में भी हुआ है। कहा गया है कि बुद्ध या बोधिसत्त के अनुयायियों का चंडालों, कौक्कुटिकों (मुर्गीपालको), संकरियों (सूअर–वधिकों), शैडिकों (मदिरा–विक्रेताओं), मनिसकसो (कसाइयो), मौष्टिकों (मुक्केबाजों), नट–नर्तकों (अभिनेताओ और नर्तकों) झल्लों और मल्लों (कुश्तीबाजों) से कोई ताल्लुक नहीं रहेगा। बौद्ध धर्मावलंबी इन लोगों से घृणा करते थे, क्योंकि वे निर्दयी और अनैतिक कार्य करने वालों के साथ रहते थे।

अधिकांश संकर जातियॉ, जिनका उल्लेख मनु ने किया है, अछूत थीं। निषादो, आयोगवों, मेदों, अंध्रें, चुचुओं, मद्गुओं, क्षत्राओं, पुक्कसों, धिग्वणों और वेणों के कृत्यों का उल्लेख करके मनु ने कहा है कि उन्हें गाँवों के बाहर बड़े–बड़े वृक्षों, चैत्यों (कब्रगाहों), श्मशानों अथवा पहाड़ों और उपवनों में बसना चाहिए। इससे पता चलता है कि ये जातियाँ ब्राह्मणों की बस्ती से बाहर रहती थी। चांडाल और

श्वपाक तो अवश्य ही गाँव से बाहर रहते थे। जिस पात्र में उन्हें भोजन कराया जाता था उसे सदा के लिए फेंक दिया जाता था। उनकी संपत्ति मात्र कुत्ते और गदहे थे, वे टूटी–फूटी थालियो में खाना खाते थे, लोहे के गहने पहनते थे और मृत व्यक्तियों के कपडे धारण करते थे तथा एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते थे। उन्हें रात को शहरों और गॉवों में आने की अनुमति नहीं थी। यहॉ ये दिन में ही काम कर सकते थे। मनु ने बताया है कि चंडालों और श्वपाकों को पहचान के लिए राजशासन द्वारा निर्धारित चिह्न धारण करना चाहिए[189]।

किंतु मनु विशेषतया यह चाहते हैं कि ब्राह्मणों और अछूतों के बीच कोई संपर्क ही नहीं रहे। उन्होंने विहित किया है कि स्नातक को (जो सामान्यतया ब्राह्मण होता है) चंडालों, पुक्कुसों, अंत्यों और अंत्यावसायिनों के साथ नहीं रहना चाहिए। श्राद्धकर्म करते समय ब्राह्मण पर जिनकी दृष्टि नहीं पड़नी चाहिए वे हैं चंडाल, ग्रामसूअर, मुर्गा, कुत्ता आदि। मनु ने यहॉ तक कहा है कि यदि कोई ब्राह्मण किसी चंडाल या अंत्य महिला का समागम करे या उसका अन्न ग्रहण करे तो वह ब्राह्मणत्व खो देगा। किंतु यदि यह जान–बूझकर ऐसा करे तो वह भी चांडाल या अंत्यज की स्थिति प्राप्त करेगा। इससे यह अर्थ निकलता है कि ब्राह्मणेतर जातियों और चंडालों के बीच ऐसे सबंध को निंदनीय नहीं माना जाता था।

मनु अस्पृश्यों और संकर जातियों को शूद्र मानते थे या नहीं, यह स्पष्ट नहीं होता। उन्होंने खुले आम कहा है कि वर्ण चार हैं। इससे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि संकर जातियों को शूद्र वर्ण में शामिल कर लिया गया था। उनकी उत्पत्ति संबंधी कथाओं से पता चलता है कि लोगों में ऐसी धारणा थी कि उनकी धमनियों में शूद्र का रक्त है। मनुस्मृति में एक स्थल पर कुल्लूक ने अंत्यज को शूद्र के रूप में चित्रित किया है। किंतु मनु ने 'अंत्यज' शब्द का प्रयोग चांडाल के अर्थ में किया

है। सूत, वैदेहक, चंडाल, मागध, क्षतृ और आयोगव जैसी मिश्रित जातियाँ 'बाह्य' समझी जाती हैं, जिन्हें टीकाकारों ने चातुर्वर्ण्य से बाहर का माना है। मनु ने परस्त्री गमन के अपराध का दंड विहित करते हुए शूद्र और अंत्यज में तथा साक्ष्य–विधि में अंत्यावसायिन और शूद्र में विभेद किया है। किंतु पतंजलि ने निरवसित शूद्र को चंडाल और मृत प्राय बताया है तथा उच्च वर्णों के लिए उसके भोजन पात्र का उपयोग वर्जित माना है। इससे पता चलता है कि ये अछूत शूद्र समझे जाते थे। मनु ने इन शूद्रों के लिए 'अपपात्र' (अर्थात वे लोग जिनके पात्र का व्यवहार नहीं किया जा सकता) शब्द का प्रयोग किया है। इस तरह मालूम होता है कि संकर जातियों और अछूतों को हीन शूद्रों की कोटि में रखा जाता था और उनके अलग निवास, पिछड़ी संस्कृति और प्राचीन धार्मिक संप्रदाय के आधार पर साधारण शूद्रों से उनमें विभेद किया जाता था।

मनु ने शूद्रों के अन्न, उनकी संगत और उनकी महिलाओं के बहिष्कार के बारे में जो नियम बनाए हैं, वे मुख्यतया ब्राह्मणों पर लागू है।। पतंजलि के महाभाष्य में हमें ब्राह्मण और वृषल के बीच इसी प्रकार का सामाजिक विभेद देखने में आता है। ब्राह्मणों के दाँत उजले हैं, तो वृषल के काले, ब्राह्मण को ऊँचा स्थान मिलता है तो वृषल को नीचा। कोई व्यक्ति वृषल और दासी के साथ अवैध और कुत्सित कर्म कर सकता है, किंतु उसे ब्राह्मणी के साथ भद्रतापूर्ण बर्ताव करना होगा[190]।

मनु ने पुरानी निषेधाज्ञा की पुनरावृत्ति की है, जिसके अनुसार वेद का अध्ययन द्विज तक ही सीमित था। इनकी तुलना में शूद्रों को 'एकजाति' अर्थात एक बार जनम लेने वाला कहा गया है। आर्य का पहला जन्म अपनी माँ से होता है, किंतु दूसरा जन्म मूँज के मेखला सूत्रबंधन से होता है। इसलिए कोई द्विज, जो वेद न पढ़कर दूसरे व्यवसायों में लग जाता है वह शूद्र समझा जाता है और उसकी संतान

की भी वही गति होती है। जब वेद की पढाई हो रही हो, तब वहाँ शूद्र को कभी नही रहने देना चाहिए।

इस नियम के होते हुए भी, सुनने मे आता है कि कुछ अध्यापक शूद्र को पढाते थे। मनु ने विधान किया है कि शूद्र को पढाने वाले या शूद्र से पढने वाले ब्राह्मण को श्राद्ध में आमंत्रित नहीं किया जाना चाहिए। यह स्पष्ट नहीं है कि शूद्र शिक्षक या क्षात्र अपधर्मी समझे जाते थे। अध्यापक से जिन दस प्रकार के लोगों को शिक्षा मिल सकती थी, उनमें शुश्रूषु का नाम आया है जिसका अर्थ कुल्लूक ने नौकर (परिचारक) किया है और इससे सम्भवतया शूद्र का निर्देश होता है।

किंतु साधारणतया ऐसा जान पडता है कि शूद्रों को शिक्षा से वंचित रखा गया था। वशिष्ठ की भॉति मनु ने भी आदेश दिया है कि कोई भी व्यक्ति शूद्र को परामर्श नही दे और न उसे कानून की व्याख्या करके समझाए। इस उपबंध को उन्होंने यह नियम बनाकर सबल कर दिया है कि जो कोई इसके प्रतिकूल कार्य करेगा, वह उस व्यक्ति के साथ ही असवृत नरक में जाएगा, जिसे उसने शिक्षा दी है।

धर्म के क्षेत्र में शूद्र वैदिक यज्ञ के अधिकार से वंचित ही रहे। कहा जाता है कि शूद्र जातिच्युत नहीं हो सकता, वह संस्कार पाने योग्य नहीं है और उसे आर्यों के धर्म का अनुसरण करने का कोई अधिकार नहीं है। द्विज को चाहिए कि धार्मिक अनुष्ठानो में अपनी शूद्र पत्नी को शरीक न करे। यदि वह मूढ़तावश ऐसा करेगा तो उसे चांडाल की भाँति घृणित समझा जाएगा। संभवतया यह नियम ब्राह्मणों से संबंधित है। यह भी विहित किया गया है कि ब्राह्मण यज्ञ के लिए अपेक्षित किसी भी वस्तु की याचना शूद्र से न करे। यदि वह ऐसा करेगा तो अगले जन्म में चांडाल होगा।

किन्तु ब्राह्मणों का एक वर्ग ऐसा भी था जो शूद्रों के धार्मिक अनुष्ठान मे सहायक का काम करता था। मनु के कथनानुसार जो ब्राह्मण शूद्र से धन लेकर अग्निहोत्र करे, उन्हें ब्रह्मवादिन् (वेदपाठी) शूद्रों के ऋत्विज् कहकर निंदित करते हैं और अज्ञानी मानते है[191]। मनुस्मृति के एक परिच्छेद की टीका करते हुए कुल्लूक ने बताया है कि शूद्र छोटे–मोटे घरेलू यज्ञ (पाकयज्ञ) कर सकते हैं। हमें भास से ज्ञात होता है कि देवताओ की पूजा शूद्र बिना मत्रो के ही करते थे। मनु कहते है कि यदि गुणी शूद्र भद्रजनों जैसे आचरण करें तो वे प्रशंसा के पात्र है, किंतु उन्हें वेदों का पाठ किए बिना ही ऐसा करना चाहिए। उन्होंने यह नियम भी बनाया है कि शूद्र तीन उच्च वर्णों की तरह अपने पूर्वजों का तर्पण कर सकते हैं। इस प्रसंग में उन्होंने कहा है कि सुकालिन शूद्रों के पितर हैं और वशिष्ठ उनके पूर्वज हैं। इन तथ्यों से पता चलता है कि मनु ने शूद्रों को कुछ धार्मिक अधिकार दिए है जो उन्हे मौर्य या मौर्यपूर्वकाल में प्राप्त नहीं थे।

मनु ने चारों वर्णों के लिए एक ही आचार–संहिता विहित की है। उन्हें अहिंसा और सत्य का पालन करना चाहिए, चोरी नहीं करनी चाहिए, पवित्र रहना चाहिए, इच्छाओं का दमन करना चाहिए, ईर्ष्या–द्वेष से बचना चाहिए और केवल अपनी पत्नियों से सतान उत्पन्न करना चाहिए। किंतु धार्मिक दृष्टि से वे स्त्रियों और शूद्रों को समाज का अत्यंत अपवित्र अंग मानते हैं। चांद्रायण व्रत करने वालों को इनका बहिष्कार करना चाहिए। उन्होंने इन लोगों के शुद्धिकरण के लिए कम कठिन धार्मिक संस्कार विहित किए हैं। शूद्र को महीने में एक बार बाल मुँडवाकर अपने आपको शुद्ध रखना चाहिए और घर में जन्म और मृत्यु होने की दशा में वैश्यों की भाँति शुद्धिकरण संस्कार का पालन करना चाहिए। कितु उन्होंने प्राचीन विधिनिर्माताओं के इस विचार का समर्थन किया है कि वैश्य की अशौच अवधि 15 दिन की और शूद्र की एक महीने की होगी। उन्होंने यह भी बताया है कि अशौच की अवधि के अंत में

ब्राह्मण पानी का स्पर्श करके, क्षत्रिय अपनी सवारी के पशु और अस्त्रों को छूकर, वैश्य अपना अकुश या अपने बैलों की नाथ (नाक मे लगी रस्सी) छूकर तथा शूद्र अपनी लाठी छूकर पवित्र हो सकता है। मनु ने यह नियम भी बनाया है कि ब्राह्मण के शव को शूद्र नही ढोएगा, क्योकि शवरूप मे भी शूद्र के स्पर्श से दूषित हो जाने पर उसे स्वर्ग प्राप्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार वे ब्राह्मण और शूद्र में मरने के बाद भी विभेद करना नही छोडे[192]।

यदि पुराणो में आए कलियुग के वर्णन को मौर्योत्तर काल में प्रचलित स्थितियो का कुछ संकेत देनेवाला माना जाए, तो यह स्पष्ट होगा कि शूद्र खुलेआम वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की अवहेलना करते थे। शूद्रों की ज्यादती का वर्णन कूर्मपुराण में किया गया है 'राजा के मूढ शूद्र अधिकारी ब्राह्मणों को अपना स्थान छोड़ने के लिए बाध्य करते हैं और उन्हें पीटते हैं। राजा बदलती हुई परिस्थितियों के कारण कलियुग में ब्राह्मण का अनादर करते हैं और ब्राह्मणों के बीच शूद्र उच्च पदों पर आसीन होते हैं। ब्राह्मण, जिन्होंने वेद का अल्प अध्ययन किया है और जो कम भाग्यशाली और शक्तिशाली है, फूलों अलंकरणों और अन्य मांगलिक वस्तुओं से शूद्रों का सम्मान करते हैं। इस प्रकार सम्मानित किए जाने पर भी शूद्र ब्राह्मणों की ओर देखता तक नहीं है। ब्राह्मण शूद्रों के घरों में प्रवेश करने का साहस नहीं करता और उनका अभिवादन करने का अवसर पाने के लिए उनके दरवाजे पर खड़ा रहता है। ब्राह्मण, जो अपने जीवन यापन के लिए शूद्र पर निर्भर रहते हैं, उनकी सवारी के चारो ओर इस उद्देश्य से खडे रहते हैं कि उनका गुण बखान कर सकें और उन्हें वेद पढ़ा सकें। कुछ इस तरह का ही वर्णन मत्स्यपुराण में भी है और यह भविष्यवाणी की गई है कि श्रुति और स्मृति का धर्म बहुत शिथिल हो जाएगा और वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो जाएगा। इसमें यह क्षोभ भी प्रकट किया गया है कि लोग वर्णसंकर होंगे , शूद्र ब्राह्मणों के साथ बैठेंगे, खाएँगे और उनके साथ यज्ञादि करेंगे

तथा मंत्रोच्चार भी करेगे। वायुपुराण और ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि कलियुग में शूद्र ब्राह्मणों जैसा और ब्राह्मण शूद्रों जैसा कर्म करते हैं। इन पुराणों से पता चलता है कि शूद्र का सब आदर करते है। और राजा का आश्रय छूट जाने के कारण ब्राह्मणों को अपनी जीविका के लिए शूद्रो का भरोसा करना पड़ता है।

सभवतया उपर्युक्त विवरण मौर्योत्तरकालीन परिस्थितियों का निर्देश करते है। ऐसा नही मालूम होता कि वे अशोक के राज्यकाल पर लागू हैं, क्योंकि अशोक को बौद्ध धर्मावलबी होने पर भी ब्राह्मणो के प्रति अनुदार नहीं बताया जा सकता, जैसा कि पुराणो में कहा गया है। यद्यपि कूर्मपुराण में कलियुग के वर्णन का समावेश ई सन् 700–800 में किया हुआ बताया जाता है, फिर भी इससे पहले के मौर्योत्तर काल का संकेत मिलता है। इस वर्णन के कुछ परिच्छेद बिल्कुल वही हैं जो उससे पहले के वायु और ब्रह्मपुराण में पाए जाते हैं। ई. सन की पॉचवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के एक उत्कीर्ण लेख में पल्लव शासक सिंहवर्मन के बारे में कहा गया है कि वह कलियुग के पापों से धर्म को बचाने के लिए सतत उद्यत रहता है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि कलियुग की कल्पना बहुत पुरानी नहीं है। जैसा पहले बताया जा चुका है, म्लेच्छों का उल्लेख और कलियुग के विवरण में निर्दिष्ट विभिन्न लोगों के अंतर्मिश्रण मौर्योत्तर काल की परिस्थितियों के बहुत अनुकूल हैं। पुराणों में कही गयी बात कि विदेशी शासक ब्राह्मणों को जान से मार डालेंगे और दूसरों की पत्नी तथा संपत्ति का अपहरण कर लेंगे, सामान्यतया इस काल में लागू होती है और यह युगपुराण में वर्णित ऐसे ही आरोपों के अनुरूप है।

कलियुग के वर्णन को, जो ब्राह्मणों द्वारा शिकायत और भविष्यवाणी के रूप में किया गया है, केवल कपोलकल्पना कहकर टाला नहीं जा सकता। उससे ब्राह्मणों की उस दयनीय स्थिति का आभास मिलता है, जो ग्रीकों, शकों और कुषाणों के

कार्यकलापों का परिणाम थी। संभव है, उनके आक्रमणो के कारण शूद्रो की स्थिति मे परिवर्तन हुआ हो और वे उठ खडे हुए हो। उनसे पहले ही से असंतोष उबल रहा था। स्वभावतया वे ब्राह्मणों के दुश्मन हो गए क्योकि उन्होंने उनके प्रति विभेदमूलक नियम बनाए थे। यह सामाजिक उथल–पुथल कब तक और देश के किस भाग मे होती रही, इसका निर्धारण करना ऑकडों के अभाव में कठिन है। कितु जान पडता है कि अपधर्मी शूद्र राजाओं के प्रति ब्राह्मणों के बैरभाव का कारण यह था कि ये राजा शूद्रो से भाई चारे का व्यवहार रखते थे। दास और भाडे के मजदूर के रूप में शूद्रो की पराधीनता शक और कुषाण शासकों की विदेश नीति से कम हुई होगी। क्योकि वे वर्णों में विभाजित समाज का आदर्श निभाने के लिए बाध्य नहीं थे।

मनु ने शूद्रों के शत्रुवत व्यवहार से बचने के बहुत से उपाय बताए हैं। कौटिल्य के विपरीत उन्होंने विहित किया है कि राजा को ऐसे देश में बसना चाहिए जहाँ के निवासी मुख्यतया आर्य हों, क्योंकि जिस राज्य में शूद्रों का बहुमत होगा (शूद्र–भूयिष्ठ) , वह तुरंत नष्ट हो जाएगा। मनु ने राज्य के संरक्षण का भार उन लोगो तक ही सीमित रखा है जो आर्यों की तरह रहते हैं। उन्होंने यह भी बताया है कि जो आर्येत्तर व्यक्ति (अर्थात शूद्र) आर्यों के चिह्न धारण करते हों, उन्हें कॉटा समझकर तुरंत हटा देना चाहिए । संकर जातियों (अधिकतर शूद्रों) को खास तौर से आर्यों से भिन्न माना जाता था और वे निर्दयी तथा उग्र स्वभाव के होते थे। मनु के ये सभी कथन शूद्रों के प्रति उनके पूर्ण अविश्वास और तज्जन्य शूद्रों के शत्रुवत व्यवहार (जो विदेशी आक्रमण के समय विशेषतया देखने में आता था या जिसकी उस वक्त खासतौर पर आशंका रहती थी) से बचने की चिंता के अनुरूप ही हैं। मनु ने जब यह कहा है कि यदि क्रांति के फलस्वरूप तीन उच्च वर्णों को अपना कर्तव्य करने में बाधा उपस्थित हो तो उन्हें शस्त्र ग्रहण करना चाहिए, तब उनके मनमें संभवतया ऐसी स्थिति की कल्पना रही होगी। कलियुग के अत में विद्यमान परिस्थितियों के

वर्णन के प्रसग मे वायुपुराण के अंर्तगत प्रमिति (माधव के अवतार) के कामो की चर्चा की गई है, जिसने ब्राह्मणों की सशस्त्र सेना बनाई और अनेक प्रकार के लोगों, यथा म्लेच्छ तथा वृषल, का विनाश करने के लिए प्रस्थान किया। यह एक ओर ब्राह्मणों और दूसरी ओर शूद्रो तथा विदेशी शासको के बीच हुए भीषण संघर्ष का हल्का सकेत है। यह स्वाभाविक ही है, क्योकि वृषल सुस्थापित व्यवस्था को तोड़ने वाले माने जाते थे, रक्षा करने वाले नहीं । मनु ने ब्राह्मणों के प्रति अपराध करने वाले शूद्रों के लिए दंड का जो वृहत विधान किया है, उसका मुख्य कारण यह कहा गया है कि सुशिक्षित शूद्रों के विरुद्ध उनके मन में बैर की भावना थी। किंतु उन्होंने जो नियम बनाए है, उन्हें समग्र रूप से देखने पर पता चलता है कि वे सामान्य शूद्रों के प्रति भी कम बैर–भाव नहीं रखते थे।

प्राचीन काल में मुख्य विभेद शूद्र और तीन उच्च वर्णों में था। यद्यपि मनु ने भी इस विभेद को माना है, फिर भी उनके ग्रंथ से प्रकट होता है कि कानूनी उपबंधों, भोजन और विवाह के मामले में वैश्यों को शूद्र के निकट लाने की प्रवृत्ति उनमें बहुत अधिक थी। इस तरह की स्थिति का कारण प्रायः यह था कि बहुत बड़ी तादाद में वैश्य शूद्र बनाए जा रहे थे। विष्णुपुराण में कहा गया है कि कलियुग में वैश्य कृषिकर्म और व्यापार छोड़ देंगे और दासत्व प्रथा एवं यांत्रिक शिल्पो को अपनाऍगे। और शूद्र जातियों का बाहुल्य होगा। मनु के एक परिच्छेद से स्पष्ट होता है कि परंपरागत वैश्य वर्ण क्रमशः विलीन होता जा रहा था। उनके अनुसार ब्राह्मण में सत्व गुण और क्षत्रिय में रजस् गुण तथा शूद्रों और म्लेच्छों में तमस् गुण होता है। (मध्यमा तामसी गतिः), जो पूर्वजन्म के कर्म के अनुसार् प्राप्त होता है। इस क्रम में वैश्य की चर्चा तक नहीं हुई है। इससे संकेत मिलता है कि वैश्य, शूद्र समुदाय में विलीन होते जा रहे थे।

हापकिस ने बताया है कि मनु के कुछ नियमों से एक ओर दो उच्च वर्ण और दूसरी ओर दो नीच वर्णों के बीच दुश्मनी का आभास मिलता है। इनके बीच होने वाले संघर्ष से मालूम होता है कि उच्च वर्णों का नेतृत्व ब्राह्मण और निम्न वर्णों का नेतृत्व शूद्र कर रहे थे। पूर्वकाल मे भी शूद्रो और अन्य वर्णो के बीच संघर्ष का आभास मिलता है किंतु मौर्योत्तर काल में इस संघर्ष ने उग्र रूप धारण कर लिया। मनु के सबध में एक रचना में बताया गया है कि भारतीय पद्धति पर निर्मित समाज मे आर्थिक विषमता और वैमनस्य विरल ही सभव थे। किंतु मनु के ग्रंथ में वर्णों के बीच जिस तरह का सबंध दिखाया गया है, उससे इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती है। मनु ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि शूद्र को धन इकट्ठा करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, क्योकि वह ब्राह्मणों को दुख देता है।

किंतु मनु के शूद्रविरोध के आधार पर यह कहना उचित नहीं होगा कि मौर्योत्तर काल में शूद्रों की स्थिति की अधिकतम अवनति हो चुकी थी। इस शूद्रविरोध को ऐसा अतिवादी उपाय मानना चाहिए जो नई शक्तियों के उद्देश्य से समाज के पुराने ढॉचे के टूटने से बचाने के लिए वांछनीय था। मनु के विधिग्रंथ में भी शूद्रों की स्थिति में हुए उन बहुतेरे परिवर्तनों का उल्लेख किया गया है, जो ब्राह्मणों के विरुद्ध उनके संघर्ष, नए-नए लोगों के आगमन और कला एवं शिल्प के विकास के परिणाम थे।

इस तथ्य के बावजूद कि मनु ने शूद्रों की दासता की बार-बार चर्चा की है, वे अब उस पैमाने पर दास और मजदूर नहीं थे जिस पैमाने पर वे मौर्य पूर्व और मौर्य काल मे थे। हमें किसी वैयक्तिक या राजकीय प्रक्षेत्र (फार्म) की सूचना नही मिलती है, जिसमें दास या भाड़े के मजदूर काम करते हों। प्रायः मौर्यों के राजकीय प्रक्षेत्रों में काम करने वाले दास और भाडे के मजदूर कर चुकाने वाले कृषक बनते जा रहे

थे। मनु ही प्रथम लेखक है जिन्होने स्पष्ट शब्दों मे शूद्रों को बटाईदार माना है। और यह ऐसा तथ्य है जिसका निष्कर्ष केवल कौटिल्य के अर्थशास्त्र से निकाला जा सकता है। अर्थशास्त्र में बटाईदार (अर्द्धसीतिक) को उत्पादन का केवल 1/5 या 1/4 हिस्सा दिया गया है, किंतु मनु ने उसके लिए उत्पादन का आधा भाग (अर्द्धिक) रखा है। मालूम होता है कि न केवल बटाईदारों का हिस्सा बढ़ा दिया गया था, बल्कि उनकी संख्या भी बढी थी।

संदर्भ ग्रन्थ

1 ऋग्वेद 10.90 12 · तुलनीय रामायण, 3 14 29–30 महाभारत, शान्तिपर्व, 122, 4–5, गीता 4.12 मनुस्मृति 1.31 इत्यादि।

2 महाभारत शन्तिपर्व 185.5

3 गीता 4 13, मनुस्मृति 1.30

4. महाभारत शान्ति पर्व 188.10

5. महाभारत 12.39.1

6 मनुस्मृति 1.95

7. मनुस्मृति 1.88 याज्ञ0 स्मृति 5 188 गो0ध0सू0 10.1–2 वौ0 ध0सू0 110.18.2 अर्थ0 1.3

8 मनुस्मृति 4.186

9. महाभारत अनुशासनपर्व 13.36.41

10. मनुस्मृति 1.97

11. महावग्ग पृष्ठ 243–44, पराजिका पृशठ 53, पच्चित्तिया पृष्ठ 360–61

12. महाभारत शान्तिपर्व 72.1.2, तुलनीय याज्ञ. स्मृति 1.313. ग्रहों के उत्पात शमन के ज्ञाता, सभी शास्त्रों के ज्ञान और अनुष्ठान से सम्मिलित दण्डनीति में कुशल तथा अथर्वाङि.रस में प्रविष्ट ब्राह्मण को ही राजा पुरोहित बनावें।

13. अर्थ. 1.9

14. गौ0 ध0सू0 13.26

15. मनुस्मृति 8.9–10–11

16 वही 7.58–59

17. एपि0 इ0 2.394, 1.31, 15.57

18 जातक जिल्द 3, संख्या 389, जिल्द 5 सख्या 516

19. गौ0 ध0 सू0 10.5.6

20. मनुस्मृति 10.82

21. गौ0 ध0 सू0 10.5

22. महाभारत 3.313.111

23 मनुस्मृति 10.85

24. देखिये, जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 87

25. अर्थ0 3.6, मनुस्मृति 1.89

26 रामायण 2 106 तुलनीय महाभारत 5.139.19–22

27. दीघनिकाय 1.98

28. रीज डेविड्स, बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ 37–38

29. सुत्तनिपात्त 1.7.21, 3.9.57

30. मज्झिमनिकाय, 2 पृष्ठ 150

31. गौ0 ध0 सू0 8.1

32. महाभारत शान्तिपर्व 56.24.25, 73.8–13

33 मनुस्मृति 10.79

34 मज्झिम निकाय 2 पृष्ठ 180

35. मनुस्मृति – 11.14

36 गौ ध सू. 7.26वौ0 ध0सू0 2 2.77, तुलनीय मनुस्मृति 10 90

37 मनुस्मृति 10.86–87–88–89–95

38 आ0ध0 सू0 2.24.25–28

39 मनुस्मृति 10 241

40. मनुस्मृति 8.267, गौ0 ध.सू. 2 3.6–7

41. महाभारत 5.132.30

42. वही 6.42.44

43. वही–12.60.13–20

44. ब0ध0सू0 2.19

45. गौ. ध.सू., 2.1.50

46. अर्थ0 3.7, मनुस्मृति 1.90

47. देखिये डा0 जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 84

48. फिक, आर0 दि सोशल आरगनाइजेशनइन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, पृष्ठ 353

49. महावग्ग–पृष्ठ 254–55

50. पाचित्य पृष्ठ 216

51 महाभारत 12.295.56

52 डा0 बुद्ध प्रकाश, स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन अध्याय सोशल एण्ड इकोनामिक हिस्ट्री आफ मौर्य इम्पायर।

53. वही

54. जातक 2 पृष्ठ 267

55. वही पृष्ठ 388

56. जातक 1 पृष्ठ 196

57 जातक 1. पृष्ठ 245, 3. पृष्ठ 29 9, 5 पृष्ठ 471

58. जातक 1. पृष्ठ 349

59. महाभारत 2.47.28

60. मनुस्मृति 8.398

61. वही 7.130

62. बौ0 ध0सू0 2.2.80

63. ऋग्वेद 10.124.8, 4.28.4, 6.25.2 आदि

64. मनुस्मृति 1.91

65. महाभारत 4.50.6

66. मनुस्मृति 10.122–23

67. वही 10.125

68. वही, 10.121

69 जातक 3 पृष्ठ 326, डा0 रामशरण शर्मा, शूद्राज इन एंसिएट इण्डिया

पृष्ठ 125–27

70 गौ0 ध0सू0 12 4

71. आ0ध0सू0 1.3, 9.9, ब0ध0 सू0 18.11.12

72 ब0ध0सू0 4 3

73. रामायण 7 73.76

74 रामायण 1.59.13–14, महाभारत 5 29.26, 12.60.37

75. महाभारत 2.33.161

76. वही 12.13.22

77. वही 12.292.2–4

78. वौ0 ध0सू0 2.10–19.1–6

79. मनुस्मृति 10–100

80. महाभारत 294.4

81. अर्थ0. 1.3

82. विनयपिटक 4 व 6

83. गौ0 ध0सू0 10.60

84. मेहता, आर.एन, प्रि बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ 194–204

85. मनु 1.91

86. वही 8– 410

87 वही, दशम 123 तुलनीय नवम 334

88 वही, दशम 121

89 हापकिस– दि म्युचुअल रिलेशस ऑफ दि फोर कास्ट्स एकार्डिंग टू मानव धर्मशास्त्र पृ0 83

90 मनु अष्ठम 418

91. युग पुराण पृष्ठ 167

92. कुल्लूक ने मनु सप्तम 154

93 मनु, द्वितीय 24

94 वही, दशम 98

95 मिलिंद पृ. 178

96. मनु, सप्तम 138

97 वही, मनु दशम 120

98 मनु की टीका दशम 120

99. मिलिंद पृष्ठ 147

100 मनुस्मृति की टीका सप्तम 154

101 महावस्तु 1 पृष्ठ 301

102. महाभाष्य– द्वितीय पृ0 33

103. मनुस्मृति अष्ठम 243

104. वही, नवम 150

105 वशिष्ठ धर्म सूत्र द्वितीय 48

106 मनुस्मृति अष्ठम 142

107. मनु दशम 129

108 मनु0 8– 179

109 लूडर्स लिस्ट सख्या 1137

110 वही, सं0 1133

111. मनु0 8–417

112. मनु0 11–18

113. वही, 11–13

114. वही, मनु 8–231

115. वही, दशम 124

116 मनु0 चतुर्थ 61

117. वही, दशम 43–44

118. मत्स्य पुराण 144.43.9

119. कूर्म पुराण अध्याय 30 पृष्ठ 304

120. विष्णु पुराण चतुर्थ 24–19

121. ब्रह्म पुराण द्वितीय 31.41

122. मनुस्मृति पंचम 84

123. मिलिन्द पृष्ठ 358

124 मनुस्मृति सप्तम 54

125. वही, सप्तम 21

126 वही, अष्ठम 20

127 कुल्लूक राघवानंद ऐड नदन आन मनु अष्ठम 20

128 मनुस्मृति नवम 322

129 वही, अष्ठम 68

130. वही, अष्ठम 62

131 कुल्लूक आन मनु अष्ठम 62

132. मनु. अष्ठम 62.69

133. वही, अष्ठम 70

134. वही, अष्ठम 254

135. वही, अष्ठम 65

136. कुल्लूक आन मनु अष्ठम 65

137. मनु. अष्ठम 66

138 वही, अष्ठम 88

139 वही

140. मनु अष्ठम 89–100

141 मनु0 अष्ठम 113

142. मनु. अष्ठम 123

143. मनु अष्ठम 124–25

144 मनु अष्ठम–24

145 मनु द्वितीय 6

146. मनु अष्ठम–41

147 के.वी.रगास्वामी आयगर

148 मनु अष्ठम 267

149 मनु अष्ठम 268

150 गौतम धर्म सूत्र द्वादश 13

151. मनु अष्ठम 270

152 वही, अष्ठम 277

153 वही, अष्ठम 271

154. मनु अष्ठम 272

155 जायसवाल मनु एंड याज्ञवल्क्य पृ.150

156 के. वी. रंगस्वामी अयंगर

157. वासम–ए वंडर दैट वाज इंडिया पृ. 80

158. मनु 8–279

159. कुल्लूक आन मनु दशम 279

160. गौतम धर्म सूत्र द्वादश–1

161. बुहलर पूर्व निर्दिष्ट 25–303

162. मनु. अष्ठम 280

163 वही, अष्ठम 281

164 कुल्लूक आन मनु अष्ठम 28

165 मनु अष्ठम 282

166. वही, अष्ठम 283

167. वही, चतुर्थ 248

168. कुल्लूक आन मनु नवम 248

169. महावस्तु 1.18

170 सद्धर्म पुण्डरीक पृष्ठ 289

171. मनु अष्ठम 284

172 मनु एकादशम 127

173 वही, एकादशम 128–31

174. वही, एकादशम (131)

175. मनु एकादशम 132.141

176. मनु अष्ठम 104–5

177. वही, एकादशम 67

178. मनु अष्ठम 337–38

179. नवम 151–154

180. नवम 155

181. वही, नवम 160

182 वही, नवम 157

183 वही, अष्ठम 40

184. वही, अष्ठम 385

185 वही, अष्ठम 383

186 वही, नवम 179

187. मनु अष्ठम 359

188 वही, दशम 26–29

189. वही, दशम–55

190. वही, 1.3.55

191. वही, एकादशम–42–43

192. हाजरा पूर्व निर्दिष्ट पृ. 208–10

अध्याय–4

शिल्पियों की दशा

शिल्पियों की दशा

वैदिक काल में यज्ञ मे बलि दिए जाने वाले लोगों की सूची में चारो वर्णों के पश्चात विभिन्न प्रकार के पेशेवर लोगो का स्थान आता है यथा, रथनिर्माता, बढई, कुंभकार, लोहार, सर्राफ, चरवाहा गडेरिया, किसान, मद्य निर्माण, मछुआ और शिकारी। इन्हें वैश्य और शूद्रों की कोटि में रखा जा सकता है। निषाद किरात, पर्णक, पौलकस और वैद[1] संभवतया शूद्र समझे जाते थे[2]। इसी सूची से पता चलता है कि शिल्पों की संख्या बढ गई थी और लोग मानने लगे थे कि विभिन्न प्रकार के शिल्पी और मजदूर शुद्र थे। ऐसा लगता है कि शिल्पी जनजातीय सामाजिक इकाइयों के अभिन्न अंग थे। कुछ शिल्पी राजकीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे औ अन्य कृषक समाज का काम चलाते थे।

परवर्ती वैदिक काल में विश का शिल्पी वर्ग शूद्र की स्थिति में पहुंच गया था। फिर भी ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे सिद्ध हो सके कि वे जिन शिल्पों या कृषिकर्मों से लगे हुए थे उसे घृणा करते थे। जहाँ तक कृषि का संबंध है लोगों के मन में निश्चित भावना थी कि इस कार्य में सहायता दी जाए और इसमे संलग्न रहने वालों को प्रोत्साहित या सम्मानित किया जाये इसके लिए वे कई प्रकार के घरेलू कर्मकाड अैर तत्र मन्त्र करते थे[3]। जहाँ तक शिल्प का प्रश्न है, चमड़े के काम के प्रति भी घृणा के प्रमाण नहीं मिलते[4]। इससे यह आभास मिलता है कि कोई भी कार्य अपने स्वरूप के कारण अपवित्र नहीं माना जाता था और यही धारणा बाद में भी चलती रही। श्रौत सूत्र में एक विशेष प्रकार का अनुष्ठान शिल्प कहलाता है जिसका अर्थ हस्तकौशल भी है[5]। वैदिक काल में शारीरिक श्रम के प्रति घृणा का अभाव था इसकी तुलना ग्रीस में हुए समानांतर विकास से की जा सकती है जहाँ हेसियोद से लेकर सुकरात तक (800 ई. पू. से करीब–करीब 400 ई. पू. तक)

जनभावना शारीरिक श्रम के पक्ष में थी। परवर्ती वैदिक काल में शारीरिक श्रम के प्रति निष्ठा संभवत. पुराने सीधे–सादे समाज से चली आ रही थी जिसमें राजा भी खेत जोतने के काम में हाथ बटांता था[7]। राजा जनक के हलचलाने की कथा प्रसिद्ध है।

उस काल के राजनैतिक जीवन में शिल्पियो की शूद्रो के समान भूमिका महत्वपूर्ण थी। भारतीय आर्यों की राज व्यवस्था की निर्माणावस्था में उन्हें राज काज में हाथ बॅटाने का पर्याप्त अवसर मिला। ध्यान देने की बात यह है कि उन्हें राज्य के लगभग एक दर्जन उच्च कर्मचारियों के उन्नत निकाय में स्थान प्राप्त था[8]। जिन्हे रत्निन कहा गया है। इसकी तुलना बारह व्यक्तियों के उस पर्षद से की जा सकती है जो प्राचीन सैम्सन, फिजियन, केल्टस आदि जैसी कई यूरोपीय जातियों की अतिप्राचीन संस्था थीं[9]। रत्नियों की सूची से पता चलता है कि उनमें सभी वर्णों के लोग रहते थे। इसमें से दो रत्निन रथकार और तक्षन, जिनकी चर्चा विभिन्न ग्रन्थों में हुई है। शूद्र वर्ग के शिल्पी थे। उनके घरो पर होने वाले समारोहों में सभी प्रकार के धातु यज्ञ शुल्क के रूप में निहित किए गए हैं जिससे पता चलता है कि वे अपने धातु संबंधी कार्य और व्यवसाय के कारण महत्वपूर्ण थे। अथर्ववेद मे रथकार और कर्मार (जिसका स्थान अब तक्षन ने ले लिया है) को सम्भवतः राजा के इर्द–गिर्द रहने वाले विश के रूप में चित्रित किया गया है[10]। प्राचीन काल में ब्राह्मण कला और शिल्प से विमुख नहीं थे, पर बाद में इस प्रकार के सारे धंधे शूद्रवर्ग को दिए गए कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत आ गए। किन्तु यह स्पष्ट नहीं कि ऐसी शिक्षा के साथ शूद्रों को साहित्य भी पढ़ाया जाता था या नहीं।

बौद्ध काल तक आते–आते शूद्रों की स्थिति में पतन हुआ। धर्म सूत्रों में साफ तौर पर जोर देकर कहा कि शूद्र को तीन उच्च वर्णों की सेवा करके अपने आश्रितो का भरण पोषण करना है[11]। गौतम कहते हैं कि शूद्र यान्त्रिक शिल्पों का सहारा

लेकर अपनी गुजर–बसर करता था[12] मालूम होता है कि शूद्र समुदाय के कुछ लोग बुनकर के रूप में कार्य करते थे तो कुछ लकडहारे, लोहार, चर्मकार कुभकार, रंगरेज आदि थे। यद्यपि इन शिल्पो का उल्लेख प्राचीन पालिग्रन्थों में हुआ है। फिर भी इन्हें अपनाने वाले वर्ण कौन–कौन से थे, इसका कोई संकेत नही किया गया है। गहपति[13] सामान्यतया ब्राह्मणकालीन समाज के वैश्य से मिलता जुलता है और उसके बारे मे एक जगह कहा गया है कि वह कला और शिल्प का व्यवसाय करके जीवन निर्वाह करता था। यदि साधन सम्पन्न व्यक्ति गहपति हो सकता था तो संभव है कि चुंद लोहार, जिसने गौतम बुद्ध तथा उसके अनुयायियो को सादा भोजन कराया था[14] और सम्पन्न कुभकार सदलपुत्त, जो पॉच सौ कुंभकारो की दूकानों का मालिक था और जिनमें अनेकानेक कुंभकार कार्य करते थे, जैसे कुछ धनवान शिल्पी गहपति थे। यह बात एक हजार लोहारों के गांव के उस प्रधान के बारे में भी सत्य हो सकती है जिसने बौधिसत्व से अपनी कन्या का विवाह रचाया[16]। यद्यपि गहपति शब्द का प्रयोग अब इस प्रकार के शिल्पियों के लिए किया जाता है यह संभव है कि अपनी संपति के कारण ही उनमें से कुछ लोग ऊँची जगह पा सके। शुद्र वर्ण के शिल्पी मौर्य पूर्व काल की कृषि अर्थव्यवस्था के बहुत ही महत्वपूर्ण अंग थे। धातु शिल्पी न केवल बढई और लोहारों के लिए कुल्हाड़ी हथौडा,आरी और छेनी बनाते थे[17] बल्कि खेती के लिए हल, कुदाल और इसी प्रकार के अन्य औजार भी तैयार करते थे[18]। जिससे किसान शहर के निवासियों के लिए अतिरिक्त खाद्यान्न उपजाने में समर्थ हो सके। खुदाइयों से पता चलता है कि बौद्ध कालीन किसान पूर्वी उत्तर प्रदेश और विहार में लोहे के हथियारों का प्रयोग पहले–पहल बडे पैमाने पर करने लगे। पालिग्रंथों मे लोहे के बने फाल की चर्चा है जिससे खेती होती थी। दक्षिणी बिहार में लोहे की सबसे बडी खाने हैं, जिसके कारण लोहे के काम में शिल्पियों की बहुत जरूरत थी[19]। नगर, जीवन और उन्नतिशील व्यापार एवं वाणिज्य, जो उत्तर पूर्व भारत में

पहली बार इस युग में दिखाई पडते हैं, शिल्पियों द्वारा प्रचुर वस्तु उत्पादन के बिना सभव नहीं हो पाते। मुख्य नगरों को शिल्पियो का संघ होता था और उनके प्रधान का राजा से विशेष संबंध रहता था[20]। कुछ शिल्पी तो राजा के घरेलू कार्यों मे लगे रहते थे और इस तरह उन्हे राजा का संरक्षण प्राप्त था। पाणिनि व्याकरण की टीका के अनुसार इन्हें राजशिल्पी कहा जाता था इनमें राज नपित और राज कुलाक (कुंभकार) का उल्लेख विशेष रूप से हुआ है[21]। इसकी पुष्टि बाद की एक जातक कथा से भी होती है जिसमें राजा कुंभकार और राज मालाकार की चर्चा आई है। सेट्ठियों और गहपतियों से भी कुछ शिल्पी जुडे हुए थे हमें पता चलता है कि एक सेट्ठी का अपना दर्जी (बुनकर) था, जो उसके संरक्षण मे रहता था और उसके घर का काम करता था[22] गहपति के बुनकरो का भी उल्लेख हुआ है जो उसके लिए कपडे बुनते थे, किन्तु अधिकांश शिल्पी प्रायः ऐसे मालिको से संबद्ध नहीं थे स्वतंत्र शिल्पियों के दृष्टांत के रूप में बढ़इयों[23] और लोहारों[24] के गाँवों और नगरों में रहने वाले शिल्पियों[25] का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। संभवतया राजा शिल्पियों के प्रमुख को प्रश्रय देकर उनके माध्यम से शिल्पी ग्रामों पर अपना थोड़ा बहुत नियंत्रण रखता था। जैसे हजार लोहारों के ग्राम का जेत्थक (प्रधान) राजा का प्रिय पात्र कहा गया है[26]। गांवों में विखरे हुए शिल्पी परिवार, जो कृषको की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे, इस तरह के नियंत्रण में नहीं थे पाणिनि ने इन्हें ग्राम शिल्पिन बताया है[27]। पाणिनि के अनुसार बढ़ई दो प्रकार के होते थे, ग्राम तक्ष, जो गांव में अपने ग्राहक के घर जाकर, रोजाना, मजूरी लेकर काम करते थे और कौटतक्ष जो अपने घर पर ही रहकर काम करते थे[28]। वह स्वतंत्र शिल्पी या जो किसी का काम स्वीकार करके उसके हाथ बॅधता नहीं था[29]। एक जातक कथा में किसी भ्रमणशील लोहार का प्रसंग आया है जो कहीं भी बुलाए जाने पर अपनी भाथी साथ लेकर चलता था[30]। शिल्पियों के अपने औजार होते थे और कुछ मामलों में तो

उन्हें निर्माण सामग्री प्राप्त करने की स्वतन्त्रता थी। हमें ऐसे ब्राह्मण बढई का पता चलता है जो जंगल से लकडी लाता था और गाडियॉ बनाकर अपना जीविकोपार्ज करता था[31]। कुंभकार के साथ भी यही बात रही होगी, जिसे मिट्टी और जलावन मुफ्त मिल जाते थे। बुनकरों और धातुकर्म करने वालो के साथ यह स्थिति नही थी। लेकिन ये शिल्पी जिन लोगों की सेवा करते थे वे उनके मालिक नही होते थे जैसी स्थिति ग्रीस[32] और रोम में थी। वहॉ दासो से शिल्पी का काम लिया जाता था जो अपने मालिक की सेवा करते थे। सामान्य रूप में शिल्पियों पर राज्य का नियंत्रण उन पर बेगार लगाने तक ही सीमित था। कर देने के बदले उन्हें महीने में एक दिन राजा का काम करना पडता था[33]। अन्यथा, धर्मशास्त्रों से मालूम होता है कि जो शुद्र शिल्पियों और कारीगरों का काम करते थे, वे स्वतन्त्र व्यक्ति थे। उनके लिए ये व्यवसाय तब विहित थे, जब वे सेवा करके अपना जीवन यापन नहीं कर पाते थे[34]।

शुद्र वर्ण के कृत्यों का निरूपण करने में कौटिल्य ने धर्म शास्त्र के परिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। उनका कहना है कि शूद्र का निर्वाह द्विजों की सेवा से होता है[35] किन्तु वे शिल्पियों, नर्तकों, अभिनेताओं आदि का व्यवसाय करके भी अपना निर्वाह करते हैं[36]। अधिकांश शूद्र पहले की ही तरह कृषि मजदूरों और दास के रूप में काम करते रहे। धर्मसूत्रों से ज्ञात होता है कि दासों को घरेलू कार्यों में लगाया जाता था। कौटिल्य ही एक मात्र और प्रथम ब्राह्मण लेखक है जिनसे पता चलता है कि दासों, को बडे पैमाने पर कृषि उत्पादन कार्य में लगाया जाता था। मौर्य काल में ऐसे अनेक प्रक्षेत्र थे जिनमें दास और भाड़े के मजदूर सीधे सीताध्यक्ष के अधीन रहकर काम करते थे। वह इन लोगों को कृषि के उकरण और अन्य साधन देता था और कृषि कर्म के लिए बढ़ई, लोहार तथा अन्य शिल्पियों की निगरानी करते थे[37]। इस तरह मौर्य साम्राज्य दासों, कर्मकरों, शिल्पियों और आदिवासियों का जो कि स्पष्टतया शूद्र वर्ग के थे, बहुत बड़ा नियोजक था बहुत से अन्य शिल्पियों को राज्य

की ओर से बुआई[38] खनन[39], भंडारपालन[40], आयुध निर्माण[41] धातुकर्म[42] आदि में लगाया जाता था। पहले बुनकर जैसे शिल्पी गहपति के अधीन काम करते थे। किन्तु बाद में राज्य उन्हें भारी संख्या में नियोजित करने लगा था औजार प्रायः शिल्पियो का अपना ही रहता था, किन्तु कच्चा माल राज्य की ओर से दिया जाता था। कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि इनमे से किन्ही भी शिल्पों में दासों को लगाया जाता था। किन्तु राज्य द्वारा शिल्पियों का नियोजन मुख्यतया राजधानी और प्राय महत्वपूर्ण नगरों में ही सीमित था, जहॉ शिल्पी पर्याप्त संख्या में रहते थे। दुर्ग निवेश विधान से पता चलता है कि शिल्पी राज महल के उत्तर में रह सकते थे और मजदूरों के शिल्पिरोधी तथा अन्य लोगों को राजधानी के विभिन्न कोणों में आवास स्थान दिए जायेंगे[43]। यह भी कहा गया है कि जो शूद्र और शिल्पी ऊनी और सूती वस्त्र बॉस की चटाई, चमडा, कवच, हथियार और म्यान बनाते हैं उन्हें राज भवन से पश्चिम की ओर निवास स्थान दिया जाना चाहिए[44]। संभवतया इनमें से कुछ लोग सूत्राध्यक्ष[45] के अधीन और कुछ शस्त्रागार अधीक्षक के अधीन कार्य करते थे[46]। मेगास्थनीज ने बताया है कि शस्त्र निर्माता और बनाने वालों को राजा से मजदूरी और रसद मिलती थी और वे केवल उसका काम करते थे[47]। इनके अलावा, औद्योगिक शिल्प से सम्बन्धित प्रत्येक बात की देखभाल के लिए नगर में पॉच व्यक्तियों की एक कमेटी बनाई गई थी[48]। इनसे पता चलता है कि राज्य का नियंत्रण और शिल्पियों का रोजगार मुख्यतया नगरों तक ही सीमित था। किन्तु मेगस्थनीज ने यह भी बताया है कि लकड़हारे बढ़इयों, लोहारों और खनिकों के कार्यों की निगरानी राज्य के उच्च अधिकारी करते थे[49]। इसका अर्थ यह हुआ कि नगर से बाहर रहने वाले शिल्पियों पर किसी न किसी ढंग का सामान्य नियंत्रण रखा जाता था।

वैदिक काल में एवं पूर्व के कालों के विपरीत इस काल में मनु ने ब्राह्मणवादी व्यवस्था के चार क्रम–ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र के बाद ही शिल्पियों को समाज मे

स्थान दिया है। के. वी आर आयंगर के अनुसार मनु की सामाजिक व्यवस्था में समानता एक कल्पना मात्र है क्योंकि मनुष्य की आवश्यकता एव शक्ति अलग–अलग होती है[50]। इस काल में वैश्य व शुद्र जो तकनीकी रूप से व उत्पादन के अच्छे गुणो से युक्त होने पर भी ऊपर के वर्णों के समान नही हो सकते थे[51]। यद्यपि की मनु ने कहा है कि कारीगरों का हाथ हमेशा शुद्ध होता है।

नित्यं शुद्धः कारूहस्त पण्ये यच्च प्रसारितम्।

ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः।।मनु 5–129।।

अर्थात कारीगर का हाथ बाजार में बेचने के लिए फैलायी गयी वस्तु और ब्रह्मचारी से प्राप्त भिक्षा द्रव्य सर्वथा शुद्ध हैं। ऐसी शास्त्र मर्यादा है। मनु ने कह है कि ब्राह्मण को, दर्जी, सोनार, लोहार, टोकरी बनाने वाले, शस्त्र बनाने वाले, शराबी, रगरेज और धोबी के हाथ का भोजन नहीं करना चाहिए[52]। इसी तरह के कड़े नियम मनु ने अपने समय में बनाये थे। तीनों उच्च वर्णों के लोग कारीगरों के बारे में कहीं गयी बातों से अपने को दूर रखते थे[53]।

निषाद जातिवाला पुरुष (वैदेह, जाति वाली स्त्री में) 'कारावर' संज्ञक चर्मकार , (चमार) जाति वाले पुत्र को उत्पन्न करता है और वैदेहक जाति वाला पुरुष (निषाद) तथा कारावर जातिवाली स्त्रियों में क्रमशः आन्ध्र और 'भेद' संज्ञक जाति वाले पुत्रों को उत्पन्न करता है, ये दोनों ग्राम के बाहर निवास करते हैं।

कारावरो निषादत्तु चर्मकारःप्रसूयते।

वैदेहिकादन्ध्रमेदौ वहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ।।मनु 10–36।।

आपत्ति काल में पडा हुआ भी ब्राह्मण मांस, लाख और नमक को बेचने से तत्काल पतित होता है और दूध बेचे से तीन दिन में शूद्र (के तुल्य) होता है। इसी प्रकार मनुस्मृति मे एक जगह कहा गया है कि–

अपः शस्त्र विषं मास सोमं गन्धाश्च सर्वशः।

क्षीर श्रौद्रं दधि घृतं तैल मधु गुडं कुशान्।।मनु 10–88।।

जल, शस्त्र, विष, मॉस, सोम, नामक लतर, सर्वविधजघ (कर्पूर कस्तूरी आदि) दूध, मधु, (शहद) दही, घी तेल, मोम गुड और कुशा को आपत्ति काल मे ब्राह्मण क्षत्रिय नहीं बेचे[54]।

अन्यत्र मनु ने मनु स्मृति मे ब्राह्मण क्षत्रिय को कारीगरी के काम से वर्जित किया है–

सर्व च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च।

अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः।।मनु 10–87।।

अर्थात सब प्रकार के सूत्र निर्मित और रंगे गये सा, अलसी, तथा उनके वस्त्र और बिना रंगे हुए वस्त्र, फल मूल, तथा औषधि को आपत्ति काल में भी ब्राह्मण–क्षत्रिय नहीं बेचें ।

मनु ने ब्राह्मण व क्षत्रिय को आपत्तिकाल में वैश्य का कर्म करने के लिए तो कहा है परन्तु आगे ही उसने उक्त कर्म को निषिद्ध भी कर दिया है[55]।

उभम्यामप्यजीवस्तु कथं स्यादिति चेम्दवेत्।

कृषि गोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम्।।मनु 10–82।।

अर्थात दोनों (ब्राह्मण व क्षत्रिय कर्म के द्वारा) जीवन निर्वाह नहीं कर सकता हुआ ब्राह्मण किस प्रकार रहे ऐसा सन्देह उपस्थिति हो जाय तो वह वैश्य के कर्म खेती, गोपालने और व्यापार से जीविका करें। परन्तु वैश्यवृत्ति से जीविका करता हुआ भी ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय हिंसा प्रधान (बैल आदि के अधीन होने से) , पराधीन कृषि कर्म प्रयत्न पूर्वक छोड दे[56]।

वैश्यवृत्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा।

हिंसाप्रायां पराधीना कृषि यत्नेन वर्जयेत्।।मनु 10–83।।

कृषि साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता।

भूमि भूमिशयांचैव हन्ति काष्ठमयोमुखम्।।मनु 10–84।।

कुछ लोग कृषि (खेती) को उत्तम कर्म मानते हैं, किन्तु वह जीविका सज्जनों से निन्दित है, क्योंकि लोहे के मुख (फार) वाला काष्ठ अर्थात हल भूमि में स्थिति जीवों को मार डालता है। मुस्मृति के अनुसार यदि ऊपर के वर्ण का कोई व्यक्ति किसी वस्तु को चुराता है तो दण्ड स्वरूप वह सुनार के यहाँ जन्म लेता है[57]।

मणिमुक्ताप्रवालानि हत्वा लोभेन मानवः।

विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु।।मनु 12–61।।

मनुष्य मणि, मोती, मूंगा और अनेक प्रकार के रत्नों को लोभ से हरण कर सुनार (हेमकर पक्षी) की योनि में उत्पन्न होता है। अन्यत्र मनु ने कहा है कि[58]

कौशेयं तित्तिरिर्हत्वा क्षौमं हत्वा तु दर्दुरः।

कार्पासतान्तंव क्रौञ्चो गोधा गां वाग्गुदो गुडम।।मनु 12–64।।

रेशमी वस्त्र का सूत चुराकर तीतर पक्षी क्षौम वस्त्र चुराकर मण्डूक (मेढक) रूई से बना अर्थात सूती वस्त्र चुराकर क्रौंच्च पक्षी, गौ को चुराकर गोह और गुड चुराकर वाग्गुद पक्षी होता है। इसी प्रकार मनु ने कहा है कि यदि ऊपर के वर्णों के लोग खान मे काम करते हैं या उच्च तकनीकी कार्य करते हैं तो वह अपनी जाति से च्युत हो जाते हैं[59]।

धान्य कुप्यपशुस्तेयं मद्यपरस्त्रीनिषेवणम्।

स्त्री शूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् ।। मनु 11–66।।

अर्थात धान्य, सुवर्ण आदि धातु तथा पशुओं की चोरी करना, मद्यपान करने वाली द्विज स्त्री के साथ सम्भोग करना स्त्री, शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रिय का वध करना और नास्तिकता में (1–1 भी) उपपातक है।

ब्राह्मण को (डण्डा या थप्पड आदि से) पीड़ित करना (मारना) नहीं सुघने योग्य (लहसुन, प्याज, विष्ठा आदि) वस्तु तथा मद्य को सूंघना कुटिलता और गुदा या कुठा में मैथुन करना ये (प्रत्येक कर्म) मनुष्य को जाति भ्रष्ट करने वाले है[60]। यथा–

ब्राह्मणस्य रूजः कृत्वा घ्रातिरघ्रे यमद्ययौः।

जैहम्यं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम्।। मनु 11–67।।

इस प्रकार मनु के विधि में कारीगरों को सामाजिक रूप से समानता नहीं मिली हुई थी और कई सम्मानित कार्यों के लिए वे लोग अयोग्य थे। बहुत से कार्य जो इस मान के पूर्व में सम्मानित थे और उनको करने से सम्मान मिलता था। वही कार्य इस समय में निहित किये जाने लगे[61]।

जहाँ तक शिल्पियों की सामाजिक आर्थिक स्थिति के स्तर की बात है तो इस काल में शिल्पियों का इस रूप में काफी विकास हुआ। इसके पूर्व के काल में

शिल्पियो पर राज्य का कडा नियंत्रण था परन्तु इस काल तक आते-आते उन्हें स्वतन्त्रता मिल गई थी[62]। इस काल में शिल्पियों की श्रेणियों में काफी सुधार हुआ जो शिल्पि राज्य के नियन्त्रण में होते थे उन्हे "राज शिल्पी" कहा जाता था और वे राजा के कर्मचारी होते थे। मनुस्मृति में राजा को अपने किले मे विभिन्न प्रकार के धान्यों से सम्पन्न रखनें के लिए कहा गया है जिसमें कारीगर भी महत्वपूर्ण थे[63]।

तत्स्यादायुधसंपन्न धनधान्येन वाहनैः।

ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च।।मनु 7-75।।

अर्थात उस (किला) को हथियार (तलवार, धनुष आदि) धन, धान्य वाहन ब्राह्मणों कारीगरों पत्ता, चारा, और जल से संयुक्त रखे। इस काल मे शिल्पियों को इस बात की स्वन्त्रता थी कि वे अपने व्यवसाय को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जा सकते थे जबकि मौर्य काल मे ऐसी स्थिति नहीं थी। ये ग्राहक के घर भी वस्तुओ को लेकर जाते थे[64]।

इस काल में शिल्पियों की बडी संख्या व्यापारी व उत्पादक के रूप में श्रेणियों में संगठित हो गयी थी। मनु की तरह अन्य साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोत भी इन श्रेणियो की सवैधानिक व्यवस्था के बारे में कुछ नहीं कहते थे। राजा की तरफ से इन श्रेणियों को काफी सम्मान दिया जाता था[65] यथा-

जातिजानपदान्धर्मांश्रेणीधर्माश्च धर्मवित्।

समीक्ष्य कुलधर्माश्च स्वधर्मयै प्रतिपादयेत्।। मनु-8-41।।

धर्मज्ञ (राजा) जाति धर्म, देश धर्म, श्रेणी धर्म और कुल धर्मः को देखकर तद्नुसार उनके अपने-अपने धर्म की व्यवस्था करे इसी प्रकार श्रेणियों और शिल्पियों के बीच आनुबन्ध के आधार पर उत्पादन किया जाता था। इसी तरह कर्मचारी व राजा

के बीच अनुबद्ध होता था। यदि कोई उसे तोड़ता था तो उसे उचित मात्रा मे आर्थिक दण्ड देना पडता था[66]।

निगृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणाम्।

चतु.सुवर्णान्षण्निष्काश्छतमानं च राजतम्।।मनु 8–220।।

अर्थात शर्त को भंग करने या तोडने वाले को राजा निग्रह कर उससे चार सुवर्ण छ निष्क या शतमान अर्थात 320 रत्ती चॉदी का दण्ड दिलावे। इसी प्रकार मनुस्मृति में एक जगह वर्णित है कि[67] ग्रामवासी देशवासी, या व्यापारी आदि के समुदाय का जो व्यक्ति सत्यादि शपथ पूर्वक किये गये समय (यह काल में इतने दिनो मे पूरा करूँगा इत्यादि रूप में शर्त ठेका) को लोभ आदि के कारण भंग करें, तो उसे देश से निकाल दें।

इस काल में श्रेणियों के साथ–साथ शिल्पियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी जिसके कारण कस्बों एवं नगरों की संख्या में लगातार वृद्धि हुई। परन्तु मनु ने नगरों एवं कस्बों का वर्णन नहीं किया है। सम्भवतः विधि निर्माता गॉवों[68] एवं कस्बों के निर्माण में कोई रुचि नहीं रखता था। इसका मुख्य कारण शायद यही रहा होगा कि कस्बों में चाहे वे नदी के किनारे हो या दूर हो जाति व्यवस्था उदारवादी रूप में प्रचलित थी[69]। पुरातात्विक एवं वौद्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि इस काल की रेणियों ने धार्मिक स्थलों को काफी धन दान दिया था। ये दान विशेषकर बौद्ध भिक्षुओ एवं समुदायों को दिये गये थे इस काल में शुद्रों के हाथ से ब्राह्मणों को दान लेते हुए भी प्रदर्शित किया गया था। भारद्वाज ऋषि का उदाहरण ऐसा ही मिलता है। –

भरद्वाज क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने।

वहीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपा।।मनु 10–107।।

अर्थात निर्जन वन में पुत्र सहित निवास करते हुए महातपस्वी 'भारद्वाज'मुनि भूख से पीडित होकर 'वृधु' नामक बढई से सौ गौओं का प्रतिग्रह (दान) लिये (तथा हीन जाति से दान लेकर भी निन्दित कर्म के आचरण करने से पाप दूषित नहीं हुए)।

मनु ने अपने कुछ उदाहरणों मे समाजिक तनाव के बारे में वर्णन किया है जो ऊपर के वर्णो व नीचे के वर्णों में व्याप्त था। मनु शूद्र के धन संग्रह करने की निन्दा करते है क्योकि इससे वह समर्थ होकर ब्राह्मणो को कष्ट पहुँचायेगा[70]।

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः।

शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव वाधते।।मनु 10–129।।

(धनोपार्जन में) समर्थ भी शूद्र को धन संग्रह नहीं करना चाहिए। क्योंकि धन को प्राप्त कर (शास्त्र का वास्तविक ज्ञान नहीं होने के कारण धन मद से शास्त्र–विरुद्धाचरण तथा ब्राह्मण सेवा के त्याग करने से) वह ब्राह्मणों को ही पीड़ित करने लगता है। मनुस्मृति में शुद्रो की सम्पत्ति को निन्दा करते हुए कहा गया है कि[71]–

यद्वनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः।

अयज्वनां तु यद्वितमासुरस्वं तदुच्यते।। मनु 11–20।।

अर्थात नित्य यज्ञ करने वालों को जो धन है उसे विद्वान लोग "देवो का धन" कहते हैं और यज्ञ नहीं करने वालों का जो धन है, उसे "असुरो का धन" कहते हैं। ज्ञातव्य है कि शुद्रो को यज्ञ का अधिकार नहीं था।

मनुस्मृति मे अन्यत्र यह कहा गया है कि दो नीचे के वर्ण अपनी आपत्ति के समय को धन देकर दूर करें।

क्षत्रियों वाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः।

तद्धि कुर्वन्ययाशक्ति प्राप्नोति परमा गतिम्।।

धनेन वैश्या शूद्रो तु जय हो मैर्द्विजोत्तम।।मनु 10–34।।

अर्थात क्षत्रिय अपने बाहुबल से (शत्रु कृत पराभव से उत्पन्न) अपनी आपत्ति को पार करें। (शक्ति के अनुसार वह) कार्य करता हुआ वह क्षत्रिय पर भगति को पाता है।

वैश्यतया शूद्र (प्रतिकार करने वालों के लिए) धन देकर और ब्राह्मण (अभिचार सम्बन्धी) जप तथा हवनों से अपनी विपत्ति को पार करे।

वैश्यो तथा शूद्रों को आपत्ति निवारण के लिए जो उपाय बताये गए हैं वे इन्हीं के अधीन कार्य करने वाले दासों व कर्मकारों पर नहीं लागू होती थी। ये सभी सुझाव मौर्यकाल के बाद शूद्र शिल्पियों को समृद्ध करते हैं।

मनु यह बात दोबारा दोहराते हैं जो पुरानी परम्परा भी है कि शूद्र शिल्पियों को महीने में एक दिन राजा के यहाँ बेगार देनी पड़ती थी। वैश्य कृषक व व्यापारी कर के रूप में अनाज का 1/8 भाग तथा लाभ का 1/20 भाग सोने के रूप में राजा को देते थे। शूद्र शिल्पि कर के रूप में राजा के यहाँ वेगार करते थे[73]।

धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विशं कार्षपणावरम्।

कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा।।मनु 10–120।।

राजा को आपत्तिकाल में वैश्य के धान्य में से आठवाँ भाग वचन के अनुसार चौथा भाग और सोने चांदी आदि से बीसवाँ भाग (आपत्ति काल नहीं होने पर वचन

के अनुसार पचासवॉ भाग) कर लेना चाहिए शूद्र बढई तथा अन्य कारीगरो से कोई कर नही लेना चाहिए क्योंकि वे वेगार के द्वारा ही राजा का उपकार करते है। शूद्र इसको पसंद करते हैं। परन्तु शिल्पियों का कुछ वर्ग ऐसा था जो कर दूसरे रूप में भी देता था। मनुस्मृति मे जुलाहो के बारे मे बताया गया है कि[74] कपडा बुनने वाला दश पल सूत के बदले मे (माडी आदि के कारण) ग्यारह पल कपड़ा दे इसके विपरीत करने वाले को राजा बारह पल दण्ड दिलवायें। सम्भवत् यह कर जुलाहों से अच्छा कार्य करने के लिए लिया जाता था। इसी प्रकार अन्य करों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि वृक्ष, मॉस, शहद घी, गन्ध, औषधि रस, फूल, मूल, फल, पत्ता, शाक, घस, चमडा, बॉस, तथा मिट्टी के बर्तन और पत्थर की बनी सब वस्तुओ का छठॉ भाग कर रूप में ग्रहण करें।

जहॉ तक समाज में वैधानिक स्तर की बात है तो मनु ने शिल्पियों को गवाह बनाने के लिए मना किया है अर्थात ये किसी भी कार्य में गवाही नहीं दे सकते[75]।

न साक्षी नृपतिः कार्या न कारूककुशीलवौ।

न श्रोत्रियों न लिंगस्यो न संगेभ्यो विनिर्गतः।। मनु 8–65।।

अर्थात राजा, कारीगर, नटभार आदि वैदिक, ब्रह्मचारी तथा सन्यासी इनको साक्षी न बनावे।

कुल्लूक ने यह कहा कि चूँकि शिल्पियों को अपने पेशों की व्यस्तता से समय नही मिलता इसलिए ऐसा कानून बनाया गया था अधिकांश शिल्पी नीचे के दो वर्णों से ही आये थे जो ऊपर के दो वर्णों के राजनीतिक व वैध अधिकारों से वंचित थे। दण्ड के व अन्य शुल्कों के बारे में दोनों ऊपर के वर्णों व नीचे के वर्णों के काफी अंतर था। जिससे दानों वर्णों के बीच वैमनस्य की खाई बढ़ती गयी। राजा शिल्पियों के घर तथा दूकान की रक्षा अपने सैनिकों के द्वारा करवाता था[76]।

इस प्रकार इस काल में शिल्पियो की सामाजिक–आर्थिक स्थिति शूद्रो के समान थी परन्तु ऊपर के दो वर्णों के बराबर नही थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 वाजसनेयि सहिता 30 (6–21) तैत्तिरीय ब्राह्मण तृतीय 4.217

2 वैदिक इंडेक्स द्वितीय पृ 267

3. अथर्ववेद तृतीय 24 पंचम का 142 वाजसनेयि संहिता चतुर्थ 10

4. दास दि इकोनामिक हिस्ट्री आफ एनशिएंट इडिया पृष्ठ 139–40

5 आश्वलायन श्रौत सूत्र अष्टम 4–5–8 नवम 10 11 11.2

6. पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट सं0 6 पृ0 1

7 विदेह के जनक का दृष्टांत

8. जायसवाल हिन्दू पोलिटी द्वितीय 20

9. चैडविक दि हिरोइक एस पृष्ठ 370

10. अथर्व वेद तृतीय 5.6

11. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1.1.1.7 गौतम धर्मसूत्र दस पृ0. 54.57

12. शिल्प वृत्तिश्व दस .60

13. इन्हें जैन ग्रन्थों में गामावई कहा गया है

14 दीघ निकार्य 2, 126

15. उवासग पृ0 184

16. जात तृतीय 281

17. वही पंचम 45

18. मेहता पूर्व निर्दिष्ट पृ0 198.9

19. दीर्घ निकाय द्वितीय 147

20. श्रीमती रीजडेविड्स, कैम्ब्रिज हिस्टी ऑफ इंडिया पृष्ठ 206

21. पाणिनी व्याकरण की वृत्ति षष्ठम 2.63

22. वही षष्ठम 38

23. जात चतुर्थ 159

24. वही 281

25. केम्ब्रिज हिस्टी ऑफ इंडिया 208

26. जातक तृतीय 281

27. वैदिक इंडेक्स 2.62

28. पाणिनी व्याकरण पंचम 4.95

29. पाणिनीव्याकरण भाष्य पंचम 4.95

30. जात षष्ठम 189

31. वही चतुर्थ 207

32. दीर्घ निकाय

33. गौतम धर्म सूत्र दशम् 31

34. गौतम धर्म सूत्र दशम 53.55 घोषल

35. अर्थशास्त्र 1.3

36. अर्थशास्त्र– 1.3

37. मैकिडल एनशिएंट इडिया ऐज डिस्क्राइब्ड वाई मेगास्थनीज ऐड एरियन पृ0 86 खंड 34

38. अर्थशास्त्र 11.23

39 वही द्वितीय 12

40. वही द्वितीय 15

41 वही द्वितीय 18

42 वही द्वितीय 17

43. वही द्वितीय 4

44. अर्थशास्त्र द्वितीय 4

45. वही द्वितीय 23

46. वही द्वितीय 48

47. मैक्रिडल एनशिएंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर पृ0 53

48. मैक्रिडल (एनशिएंट इंडिया एजडिस्क्राइब्ड वाई मेगास्थनीज ऐंड एरिया पृष्ठ 87 खंड 34

49. वही पृ0 86 खंड 34

50 एक्सपेक्ट आफ सोसल एण्ड पोलिटिकल सिस्टम आफ मनुस्मृति पृ0 93

51. शर्मा –सम इकोनामिक्स एसपेक्ट आफ द कास्ट ऐड एनशिएंट इंडिया पेज–26

52. मनु नवम–214–17

53. मनु दशम–36–92

54. मनु दशम–88

55 मनु दशम–82

56 मनु दशम–83 दशम–84

57. मनु द्वादशम 61

58 मनु द्वादशम् 63

59 मनु एकादशम् 66

60. मनु एकादशम 67

61. चित्रा–तिवारी पृ0 17

62 शर्मा (एस आई ए आई) पृष्ठ 218

63. मनु सप्तम–75

64. अध्या (ई.आई.ई.) पृ0 82

65. मनु अष्ठम–41

66. मनु अष्ठम–220

67. इयर्ली इडिया इकोनामिकल पृष्ठ 82

68. शर्मा (एस.आई ए.आई) पृ0 219

69. मनु दशम–107

70. मनु दशम 129

71. मनु दशम 20

72. मनु एकादशम 34

73. मनु दशाम–120

74 मनु अष्ठम–397

75 मनु अष्ठम–65

76 मनु नवम् 266

अध्याय-5

उपसंहार

उपसंहार

शोध प्रबन्ध के इस अतिम अध्याय मे मैने मनुस्मृति में शिल्पियों की सामाजिक आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक विवेचन एवं निष्कर्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस काल मे शिल्पियों के नये सघ बनने और नए-नए हस्तशिल्पों का उदय होने से उस काल के न केवल आर्थिक जीवन मे बल्कि शूद्रो की स्थिति मे भी अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। शक्ति सम्पन्न मौर्य साम्राज्य का पतन हो जाने पर इन सघों के जरिये शिल्पियों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता मिली जिससे उनकी हैसियत भी कुछ बढी। यह बात इन शिल्पियों द्वारा बौद्धो को दिये गये अनेकानेक दान के पुरालेखों से प्रमाणित होती है। कुछ राजाओं की आर्थिक नीति से भी शूद्रो की स्थिति सुधरने में परोक्ष रूप से सहायता पहुँची। शक राजा रुद्रदामन, जो वर्णाश्रित समाज का समर्थक था दावा करता है कि उसने अपनी प्रजा से बेगारी कराए बिना सुदर्शन झील की मरम्मत कराई। यह उन शूद्र दासों और मजदूरों के लिए अवश्य ही वरदान सिद्ध हुआ होगा।

नये हस्तशिल्पों और शिल्पी संघों के उदय के साहित्यिक प्रभाव को सिक्का साक्ष्य और विदेशी लेखकों की रचनाओं मे वर्णित रोम तथा भारत के बीच के व्यापार सम्बन्ध के साक्ष्य के साथ देखा जा सकता है। यह व्यापार ईस्वी सन की प्रथम दो शताब्दियों खासकर सातवाहन काल में अपने चरम उत्कर्ष पर था। व्यापार के ऐसे विकास के फलस्वरूप व्यापारिक बन्दरगाहों और देश के भीतर के भी कुछ अन्य नगरों में जाति गत कटुता अवश्य घटी होगी, जिससे निम्न वर्ण के लागों की सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ होगा।

इस काल की सबसे भारी आर्थिक घटना थी भारत और पूर्वी रोमन साम्राज्य के बीच फूलता फलता व्यापार। आरम्भ में यह व्यापार अधिकतर स्थल मार्ग से होता

था, ईसा पूर्व पहली सदी से शकों, पार्थियनो और कुषाणों के संचार के कारण स्थल मार्ग से व्यापार करना संकटापन्न हो गया। यद्यपि ईरान के पार्थियन लोग भारत से लोहा और इस्पात का निर्यात करते थे, लेकिन ईरान के और भी पश्चिमी इलाकों से भारत के व्यापार मे वे बाधा डालते थे। परन्तु ईसा की पहली सदी से व्यापार मुख्यत समुद्री मार्ग से होने लगा। लगता है कि ई0 सन् के आरम्भ के आसपास मानसून के रहस्य का पता लग गया, फलस्वरूप अब नाविक अरब सागर के पूर्वी तटों से उसके पश्चिमी तटों तक का सफर काफी कम समय में कर सकते थे। वे भारत के विभिन्न बनदरगाहो पर आसानी से पहुँच सकते थे, जैसे पश्चिमी समुद्र तट पर भडौच और सोपारा, तथा पूर्वी तट पर अरिकामेडु और ताम्रलिप्ति। इन सभी बन्दरगाहों में भडौच सबसे महत्वपूर्ण और उन्नतिशील था। वहाँ सातवाहन राज्य के उत्पादन तो पहुँचते थे। शक और कुषाण लोग पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त से पश्चिमी समुद्र तट तक दो मार्गों से जाते थे। दोनों मार्ग तक्षशिला में मिलते थे और मध्य एशिया से गुजरने वाले रेशम मार्ग से भी जुडे थे। पहला मार्ग उत्तर से सीधे दक्षिण की ओर जाता था, तक्षशिला को निम्न सिन्धु घाटी से जोड़ता था और वहाँ से भड़ौच चला गया था। दूसरा मार्ग, जो उत्तरापथ नाम से विदित है, अधिक चालू था। यह तक्षशिला से चलकर आधुनिक पंजाब से होते हुए यमुना के पश्चिम तट पहुँचता और यमुना का अनुसरण करते हुए दक्षिण की ओर मथुरा पहुँचता था। फिर मथुरा से मालवा के उज्जैन पहुँचकर वहाँ से पश्चिमी समुद्र तट पर भड़ौच जाता था। उज्जैन में आकर एक और मार्ग उससे मिलता था, जो इलाहाबाद के समीप कौशाम्बी से निकला था।

भारत और रोम के बीच व्यापार तो भारी मात्रा में चला, लेकिन इस व्यापार में साधारण लोगों के रोजमर्रे के काम की चीजें शामिल नहीं थी। बाजार में विलास की वस्तुएँ खूब चलती थी, जिन्हें कभी-कभी अभिजात वर्गीय आवश्यकता की वस्तुएँ भी कहते हैं। रोम वालों ने सबसे पहले देश के सुदूर दक्षिणी हिस्से से व्यापार आरम्भ

किया, इसीलिए उनके सबसे पहले के सिक्के तमिल राज्यों से मिले हैं, जो सातवाहन के राज्य क्षेत्र के बाहर है। रोम वाले मुख्यतः मसालों का आयात करते थे जिनके लिए दक्षिण भारत मशहूर था। वे मध्य और दक्षिण भारत से मलमल, मोती, रत्न और माणिक्य का आयात करते थे। लोहे की वस्तुएँ, खास कर बर्तन, रोमन साम्राज्य में भेजी जाने वाली महत्वपूर्ण वस्तुएँ थी। मोती, हाथी दाँत, रत्न और पशु, विलास की वस्तुएँ मानी जाती थी, किन्तु पौधे और उसके सामान लोगों की धार्मिक, अंतिम संस्कार विषयक, पाक सम्बन्धी, और औषधीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। पाकशाला के बर्तन भी आयात मे शामिल रहे होंगे। छुरी–काँटे का प्रयोग उच्चवर्ग के लोगो में शायद महत्वपूर्ण स्थान रखता होगा।

भारत से सीधे भेजी जाने वाली वस्तुओं के अलावा, कुछ वस्तुएँ चीन और मध्य एशिया से भारत आती और तब यहाँ से रोमन साम्राज्य के पूर्वी भागों में भेजी जाती थी। रेशम चीन से सीधे रोमन साम्राज्य को अफगानिस्तान और ईरान से गुजरने वाले रेशम–मार्ग से भेजा जाता था। लेकिन बाद में जब ईरान और उसके पड़ोस के क्षेत्रों में पार्थियनों का शासन हो गया तब इसमें कठिनाई पैदा हुई। अतः रेशम रास्ता बदलकर इस उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर भाग से होते हुए पश्चिमी भारत के बन्दरगाहों पर आने लगा। कभी–कभी चीन से रेशम भारत के पूर्वी समुद्र तट होते हुए भी भारत आता था, तब वह यहाँ से पश्चिम को जाता था। इस प्रकार भारत और रोमन साम्राज्य के बीच रेशम का पारगमन व्यापार काफी चला।

बदले में, रोमन लोग भारत को शराब, शराब के दोहत्थे कलश और मिट्टी के अन्यान्य प्रकार के पात्र भेजते थे। ये वस्तुएं पश्चिमी बंगाल के तामलुक, पांडिचेरी के निकट के अरिकमेडु और दक्षिण भारत के कई अन्य स्थानों में खुदाई में मिली है। कभी–कभी तो वे वस्तुएँ गुवाहाटी तक पहुँच जाती। लगता है, सातवाहन अपना

सिक्का ढालने में जिस सीसे का इस्तेमाल करते थे वह रोम से लपेटी हुई पट्टियो की शक्ल मे मॅगाया जाता था। उत्तर भारत में रोम से आई वस्तुएँ बहुत कम ही मिली है, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि कुषाणो के समय मे इस उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर भाग में ईसा की दूसरी सदी में रोम के साम्राज्य के पूर्वी भाग के साथ व्यापार चलता था। जब 115 ई. में मेसोपोटामिया को जीतकर रोम का प्रान्त बना लिया गया तब इस व्यापार को और सहूलियत मिली। रोम सम्राट ट्राजन ने न केवल मस्कट पर विजय प्राप्त की, बल्कि फारस की खाड़ी का पता भी लगाया। व्यापार और विजय के फलस्वरूप रोमन वस्तुएँ अफगानिस्तान और पश्चिमोत्तर भारत में पहुँची। काबुल से 72 किलोमीटर उत्तर बेग्राम में इटली, मिस्र और सीरिया में बने शीशे के बड़े–बडे मर्तबान मिले हैं। वहाँ कटोरे, कॉसे का गोड़ा, इस्पात का पैमाना, पश्चिमी बाट, कॉसे की छोटी–छोटी यूनानी–रोमन मूर्तियाँ, सुराहियाँ और सिलखड़ी के अन्यान्य पात्र भी मिले हैं। तक्षशिला में, जिसकी पहचान पाकिस्तान के पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के आधुनिक सिरकप से की गई है, यूनानी–रोमन कांस्यमूर्तियों के उत्कृष्ट नमूने मिले हैं। हमें चाँदी के गहने, कुछ कांस्य पात्र, एक कलश और रोमन सम्राट तिबेरिअस के कुछ सिक्के भी मिले हैं। परन्तु अरेटाइन मृदभांड जो दक्षिण भारत में आम तौर पर पाए जाते हैं, वे मध्य भारत या पश्चिमी भारत या अफगानिस्तान मे नहीं मिलते। स्पष्ट है कि इन स्थानों में वे लोकप्रिय पश्चिमी वस्तुएँ नही पहुॅची, जो अधिकतर विन्ध्य के दक्षिण में सातवाहन राज्य में और उससे भी दक्षिण में पाई गई है। इस प्रकार सातवाहनों और कुषाणों के राज्यों को रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार से लाभ पहुँचा, यद्यपि लगता है कि सबसे अधिक लाभ सातवाहनों को हुआ।

रोम से भारत आई वस्तुओं में सबसे महत्व के हैं ढेर–सारे रोमन सिक्के, जो प्रायः सोने और चाँदी के है। समूचे उपमहाद्वीप में लगभग 150 ऐसे सिक्के प्रकाश में

आए है और इनमे अधिकतर विन्ध्य के दक्षिण मे पाए गए हैं। इससे यह समझ में आ जाता है कि रोमन लेखक प्लिनी ने 77 ई. में लैटिन में लिखे नेचरल हिस्ट्री नामक अपने विवरण में दुख भरे शब्दों मे क्यों कहा है कि भारत के साथ व्यापार करके रोम अपना स्वर्णभंडार लुटाता जा रहा है। इस कथन में अतिरंजन हो सकता है। लेकिन उससे भी पहले 22 ई. में हम यह शिकायत सुनते हैं कि रोम पूरब से गोल मिर्च मॅगाने पर अत्यधिक खर्च कर रहा है। पश्चिम के लोगों को भारतीय गोलमिर्च इतनी प्रिय थी कि संस्कृत में गोलमिर्च का नाम ही पड गया यवनप्रिय। भारत मे बने छुरी–कॉटे के इस्तेमाल के खिलाफ भी भारी प्रतिक्रिया हुई, जिन्हें रोम के अमीर लोग ऊँची कीमतो मे खरीदते थे। उस समय लोगों को व्यापार–सन्तुलन की अवधरणा भले ही न रही हो, परन्तु भारतीय प्रायद्वीप में पाए गए रोमन सिक्कों और पात्रो की बहुतायत से इसमें सन्देह नही रह जाता है कि रोम के साथ व्यापार में भारत का पलडा भारी था। रोम की मुद्रा में होने वाली कमी का अनुभव इतना तेज हुआ कि अन्ततोगत्वा रोम को भारत के साथ गोलमिर्च और इस्पात के माल का व्यापार बन्द करने के लिए कदम उठाना पड़ा।

लगता है कि भारत–रोम व्यापार और जहाजरानी में मुख्य भूमिका रोमनो ने अदा की। यद्यपि रोमन व्यापारी दक्षिण भारत में बस गए, पर इस बात का प्रमाण नहीं मिलता कि भारत के लोग रोम साम्राज्य में बसे। तमिल भाषा में लिखित ग्राफिटो वाले बरतनों के कुछ टुकड़ों से प्रतीत होता है कि कुछ तमिल सौदागर रोमन काल में मिस्र में बसते थे।

भारत के लोग रोम से भारत आए चाँदी और सोने के सिक्कों का उपयोग किस काम में करते थे? रोमन स्वर्ण मुद्राएँ स्वभावतः अपनी धातु के लिए मूल्यवान होती थी, पर साथ ही उनका प्रचलन बड़े–बड़े लेन–देन में भी रहा होगा। उत्तर में

भारतीय–यूनानी शासको ने कुछ स्वर्ण मुद्राएँ जारी की। लेकिन कुषाणो ने काफी सख्या मे स्वर्ण मुद्राएँ चलाई। यह समझना गलत होगा कि सभी कुषाण स्वर्ण मुद्राएँ रोमन सोने से ढाली गई। बहुत पूर्व पॉचवी सदी ई. पू. में ही भारत ने ईरानी साम्राज्य को नजराना के तौर पर 320 टैलेट सोना दिया था। यह सोना सिन्ध की स्वर्ण–खान से निकाला गया होगा। कुषाण सम्भवतः मध्य एशिया से सोना प्राप्त करते थे। उन्हे यह सोना या तो कर्नाटक से मिला होगा। या दक्षिण बिहार की ढालभूमि स्वर्ण खानों से, जो बाद में उनके अधिकार मे आ गई। रोम से सम्पर्क के फलस्वरूप कुषाणो ने दीनार सदृश स्वर्ण मुद्राएँ जारी की, जो गुप्तो के शासन काल में खूब प्रचलित हुई। परन्तु स्वर्ण मुद्राओ का प्रयोग रोज मर्रे के लेन–देन में नहीं होता होगा, ये लेन–देन सीसे, पोटीन या तॉबे के सिक्कों से चलते थे। आंध्र में सीसा और ताँबा दोनों की खाने पाई गई हैं। आन्ध्र ने दक्कन में सीसे और पोटीन के सिक्के बड़ी संख्या में जारी किए। प्रायद्वीप के शीर्ष भाग में कुछ आहत मुद्राएँ और आरम्भिक संगम युग की मुद्राएँ पाई गई हैं। कुषाणों ने उत्तर और पश्चिमोत्तर भारत में ताँबे के सिक्के सबसे अधिक संख्या में जारी किए। तॉबे और काँसे के सिक्के भारी मात्रा में कई देशी राजवंशों ने भी जारी किए, जैसे मध्य भारत में राज करने वाले नाग, पूर्वी राजस्थान पर तथा हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश के संलग्न क्षेत्रों पर शासन करने वाले यौधेय, तथा कौशाम्बी, मथुरा, अवन्ति और अहिच्छत्र (उत्तर प्रदेश का बरेली जिला) में राज करने वाले यौधेय। शायद इस काल में मुद्रात्मक अर्थव्यवस्था नगरों और उपनगरों के जन सामान्य के जीवन में जितनी गहराई तक प्रवेश कर गई वैसा अन्य किसी भी काल में नहीं देखा गया है। यह स्थिति कला और शिल्प के विकास तथा रोमन साम्राज्य के साथ पुरजोर व्यापार के अनुरूप ही है।

शिल्प और वाणिज्य में बढत और मुद्रा के अधिकाधिक प्रयोग के परिणामस्वरूप इस काल मे अनेकानेक नगरो की श्रीवृद्धि हुई। वैशाली, पाटलिपुत्र, वाराणसी, कौशाम्बी, श्रावस्ती, हस्तिनापुर, मथुरा, इन्द्रप्रस्थ (नई दिल्ली का पुराना किला) इन सभी उत्तर भारतीय नगरो के उल्लेख साहित्यिक ग्रन्थों में मिलते है और कुछ नगरो का वर्णन चीनी यात्रियो ने भी किया है। अधिकतर नगर ईसा की पहली और दूसरी सदियो मे कुषाण काल मे फूले–फले, ऐसा उत्खननों के आधार पर कहा जा सकता है, क्योंकि उत्खननो से कुषाण युग की उत्कृष्टतर सरचनाएँ प्रकट हुई है। इनसे यह भी प्रकट होता है कि बिहार के कई स्थल, जैसे चिराँद, सोनपुर और बक्सर आदि तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के कई स्थल, खैराडीह और मासोन कुषाण काल में समृद्ध थे। इसी तरह उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के पास श्रृंगवेरपुर, सोहगौरा, भीटा और कौशाम्बी, तथा मेरठ और मुजफ्फरनगर जिलों में अतरंजीखेरा और कई अन्य स्थल कुषाण काल में उन्नति पर थे। हम श्रृंगवेरपुर और चिराँद दोनों स्थलों पर बहुत–सी कुषाणकालीन ईंट–संरचनाएँ पाते हैं। मथुरा में सोख के उत्खनन में कुषाण अवस्था के सात स्तर दिखाई देते हैं, जबकि गुप्त अवस्था का केवल एक स्तर है। फिर, पजाब के अन्तर्गत जालन्धर, लुधियाना और रोपड़ में, कई स्थलों का भी यही हाल है। कई जगह तो कुषाण कालीन संरचनाओं से निकली पुरानी ईंटों से गुप्त काल में बनी भोड़े ढंग की संरचनाएँ भी मिली हैं। कुल मिलाकर कुषाण अवस्था के बताए गए भौतिक अवशेषों से प्रतीत होता है कि नगरीकरण उत्कर्ष की चोटी पर पहुँच गया था। मालवा और पश्चिमी भारत के शक राज्य के बारे में भी यह बात लागू है। सबसे महत्वपूर्ण नगर उज्जयिनी था, क्योंकि यहाँ दो बड़े मार्ग मिलते थे एक कौशाम्बी से आने वाला और दूसरा मथुरा से। इसका महत्व इसलिए भी था कि यहाँ से अगेट (गोमेद और कार्नेलियन इन्द्रगोप) पत्थरों का निर्यात होता था। उत्खननों से ज्ञात होता है कि यहाँ 200 ई. पू. के बाद मणि या मनके बनाने के लिए

गोमेद, इन्द्रगोप और सूर्यकान्त (जैस्पर) रत्नो का काम बड़े पैमाने पर होता था। यह सम्भव था, क्योकि शिप्रा नदी की तहशल के फाँसों से ये पत्थर प्रचुर मात्रा में प्राप्त किए जा सकते थे।

शक और कुषाण काल के समान ही, सात वाहन राज्य में नगर उन्नति करते रहे। सातवाहन काल में पश्चिमी और दक्षिणी भारत में तगर (तेर), पैठान, धान्यकटक, अमरावती, नागार्जुनकोडा, भड़ौच, सोपारा, अरिकमेदु, कावेरी पट्टनम ये सभी समृद्ध नगर थे। तेलंगाना में कई सातवाहन बस्तियाँ खुदाई में निकली हैं। इनमें से कुछ तो आन्ध्रो के दीवार–घिरे उन्तीस नगरों में से होगे जिनका उल्लेख प्लिनी ने किया है। उनका उदय आन्ध्र के तटवर्ती शहरो से काफी पहले, परन्तु पश्चिमी महाराष्ट्र, के शहरों से कुछ ही समय बाद हुआ होगा। परन्तु महाराष्ट्र, आन्ध्र और तमिलनाडु में नगरो का ह्रास सामान्यतः ईसा की तीसरी सदी के मध्य से या उसके बाद से शुरू हो जात है।

कुषाण और सातवाहन साम्राज्यों में नगरों की उन्नति इसलिए हुई कि रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार बहुत अच्छा चल रहा था। भारत रोमन साम्राज्य के पूर्वी भाग और मध्य एशिया के साथ भी व्यापार करता था। पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में नगर इसलिए फूलते–फलते रहे कि कुषाण शक्ति का केन्द्र पश्चिमोत्तर भारत था। भारत में अधिकतर कुषाण नगर मथुरा से तक्षशिला जाने वाले पश्चिमोत्तर मार्ग या उत्तरापथ पर पड़ते थे। कुषाण साम्राज्य में मार्गों पर सुरक्षा का प्रबन्ध था। ईसा की तीसरी सदी में उसका अन्त होने से इन नगरों को गहरा धक्का लगा। शायद यही बात दक्कन में भी हुई । तीसरी सदी से जब रोम साम्राज्य ने भारत के साथ व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया, नगर अपने शिल्पियों और वणिकों का भरण

पोषण करने मे असमर्थ हो गए। दकन में हुई खुदाइयों से भी सातवाहन अवस्था के बाद से नगर बस्तियो का ह्रास होना लक्षित होता है।

इस प्रकार हम निष्कर्षतः कह सकते है कि इस काल मे शिल्पियों की आर्थिक स्थिति अन्य कालो के सापेक्ष मजबूत तो हुयी परन्तु उनकी सामाजिक स्थिति का अन्य ऊपर के वर्णो की अपेक्षा ह्रास हुआ। इसका मुख्य कारण शिल्पियो के सघ का अभ्युदय जो उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध करता था शिल्पी संघो के उदय से नये नये व्यापारिक मार्गों एव शहरी बस्तियो का उत्थान बडी तीव्र गति से हुआ जिससे शिल्पि अपने व्यवसायों को सुचारू रूप से सुव्यवस्थित एव मजबूत कर सकें।

परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

संस्कृत, पालि और प्राकृत के प्राचीन मूलग्रन्थ

अथर्ववेद · संपादक, आर. रौथ और डब्ल्यू0 डी0 हिवट्ने, वर्लिन, 1856
संपादक, श्रीपाद शर्मा, औषध नगर 1938

अगुत्तर निकाय · संपादक, आर मोरिस और ई हार्डी, ने लंदन, 1883–1900

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र : सुदर्शनाचार्य की टीका सहित, मैसूर गवर्नमेण्ट संस्कृत लाइब्रेरी सीरिज

आचारांग सूत्र : अनुवाद जैकोबी, 22, आक्स फोर्ड 1984.

आश्वालयन गृह्यसूत्र : नारायण की टीका सहित, निर्णय सागर प्रेस, मम्बई 1894

आपस्तम्ब धर्म सूत्र . हरदत्त की टीका सहित, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

ऐतरेय ब्राह्मण : पदगुरुशिष्यकृत सुखप्रदावृति सहित, त्रावणकोर विश्वविद्यालय संस्कृत सीरीज, त्रिवेन्द्रम।

उपनिषद : निर्णयसागर प्रेस, बम्बई : गीता प्रेस गोरखपुर।

ऋग्वेद : सायण भाष्य सहित, सम्पादक, एफ0 मैक्स मूलर, 1890–92 ; पाँच भाग,

कौटिल्य अर्थशास्त्र : सम्पादक, आर0 शामशास्त्री मैसूर, 1909–1929

चुलवग्ग : पालि ब्लिकेशन बोर्ड बिहार गवर्नमेण्ट, 1856

तैत्तिरीय ब्राह्मण : शामशास्त्री, मैसूर, 1921

जातक : संपादक, फाउसवोल्ल, 1877–97 कैम्ब्रिज, अनुवाद,

1895–1913 हिदी अनुवाद, भदन्त आनन्द कौसल्यायन

दीर्घनिकाय संपादक, रीज डेविड्स और ई कारपेन्टर, लन्दन, 1890–1911 हिन्दी अनुवाद, राहुल सांकृत्यायन, सारनाथ, वाराणसी, 1936

पाणिनी–अष्टाध्यायी · निर्णय सागर प्रेस, 1929

पतजलि महाभाष्य : संपादक, एफ0 कीलहार्न, बम्बई

धम्मपद संपादक, राहुल सांकृत्यायन, रगून, 1937

मनुस्मृति : कुल्लुकमहविरचिता हिन्दी ब्याख्याकार हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराण्सी, 1970, मेघातिथि की टीका के साथ, कलकत्ता–1932

बौधायनधर्मसूत्र : आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज,

माज्झिम निकाय : वही, 1958

महाभारत : नील कण्ठ की टीका सहित, पूना, 1929–1933, गीता प्रेस, गोरखपुर

मिताक्षरा : विज्ञानेश्वर, याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य, बम्बई, 1905

याज्ञवल्क्य स्मृति : संपादक, जे0 आर0 धरपुरे बम्बई, 1929 हिन्दी ब्याख्याकार उमेश चन्द्र पाण्डेय चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी 1967

सुत्तनिपात : राहुल सांकृत्यायन, रंगून 1937

रामायण : मद्रास, 1937 गीता प्रेस गोरखपुर

विनयपिटक . अनुवाद, रीजडेविडस आक्स फोर्ड, 1881–85 हिन्दी अनुवाद, राहुल साकृत्यायन सारनाथ, 1935

आधुनिक ग्रंथ

अग्रवाल, वी. एल. – पाणिनी कालीन भारत, वाराणसी, 1955

आयगर, के वी आर. – आस्पेक्ट्स आफ स्पेशल एण्ड पोलिटिकल सिस्टम मनुस्मृति, लखनऊ, 1949

अल्तेकर, ए. एस – प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, इलाहाबाद 1959

कौशाम्बी, डी डी. – कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन आफ एन्शियंट इण्डिया इन हिस्टारिकल आउटलाइन, लन्दन, 1965

घोषाल, यू. एन. – अग्रेरियन सिस्टम इन एंशिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1930

गोपाल लल्लन जी – दि इकोनामिक लाइफ आफ नार्दन इण्डिया, दिल्ली 1965

थापर, रोमिला – अशोक तथा मौर्य साम्राज्य का पतन, दिल्ली 1977

मजूमदार रमेश चन्द्र – प्राचीन भारत में संघटित जीवन अनुवादक कृष्णदत्त वाजपेयी, जबलपुर, 966 कारपोरेट लाइफ इन एशिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1922

भट्टाचार्या, ए सी. – सम आस्पेक्टस आफ इण्डियन सोसायटी, कलकत्ता, 1978

राय, उदय नारायण – प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद 1965

मिश्र, जयशंकर – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना, 1983

शर्मा, आर. एस. – शूद्रों का प्राचीन इतिहास दिल्ली, 1979 प्राचीन भारत की शासन संस्थायें और राजनीतिक विचार, दिल्ली, 1977 लाइट आन अरली इण्डियन सोसायटी एण्ड इकोनमी, बम्बई 1966

विद्यालंकार, सत्यकेतु – प्राचीन भारत की शासन की संस्थाएं और राजनीतिक विचार, दिल्ली, 1975

शर्मा, जी आर – दि इक्शपेनसश कौशाम्बी, इलाहाबाद

डा0 शशि कान्त राय – प्राचीन भारत मे व्यावसायिक समुदाय–नई दिल्ली 1986

महत्वपूर्ण पुरातत्व सामग्री

अल्तेकर, ए एस – रिपोर्ट आन कुम्राहारा इक्सवेशस 1951–55, पटना, 1959

ह्वीलर, एम – अरिकामेडु, एन इण्डोरोमन ट्रेडिंग सेन्टर आन इस्ट–कोस्ट आफ इण्डिया, ए. आई. दो 1946–47

शर्मा, जी आर – इक्सवेशन्स एट कौशाम्बी 1957–59 इलाहाबाद 1960

कुछ महत्वपूर्ण जर्नल्स

एशिएण्ट इण्डिया

अर्किआलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट्स

अर्किआलोजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इण्डिया, मैनुअल रिपोर्ट्स इण्डियन कल्चर

दि इण्डियन इकोनामिक एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू

इकोनामिकल डेबलपमेन्ट एण्ड कल्चरल चेन्ज

शब्द संकेत सूची

1.	अर्थ0	:	अर्थशास्त्र
2	आ0 ध0 सू0	:	आपस्तम्ब धर्मसूत्र
3	एपि0 इ0	:	एपिग्राफिक इण्डिका
4.	का0 श्रौ0 सू0	:	कात्यायन श्रौतसूत्र
5.	गौ0 ध0 सू0	:	गौतम धर्म सूत्र
6	ब0 ध0सू0	:	वशिष्ठ धर्म सूत्र
7.	बौ0 श्रौ0 सू0	:	बौधायन श्रौतसूत्र
8.	मनु0	:	मनुस्मृति
9.	याज्ञ0 स्मृति	.	याज्ञवाल्क्य स्मृति
10.	मिलिन्द0	:	मिलिन्दपन्हों